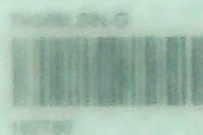
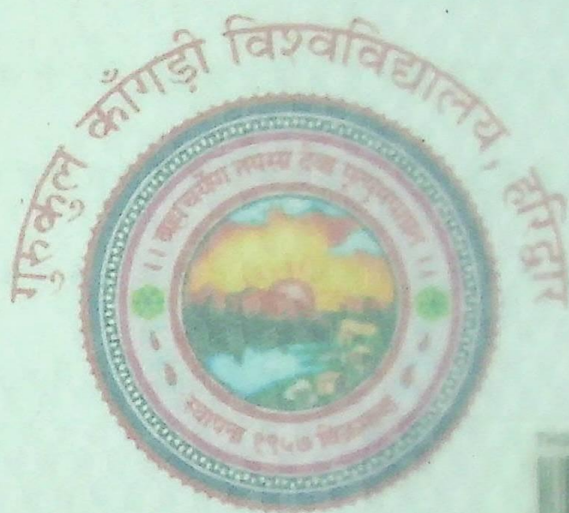




गुप्त कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

लघु शोध प्रबन्ध



सत्र 2015-2016

निर्देशक

[Signature]

शोधार्थी

[Signature]

Laikhan Singh

डा० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

डा० प्रा० इति० स० एवं पुरातत्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

लाखन सिंह

प्रोफेसर

एम. ए., तृतीय सेमेस्टर

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार - 249404, उत्तराखण्ड



सं-२
भाग-१

गुप्त कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं
प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

लघु शोध प्रबन्ध



सत्र 2015-2016

TH96M, SIN-G



182780

निर्देशक

डॉ० देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

शोधार्थी

Lakhan Singh

प्रा० भा० इति० स० एवं पुरातत्त्व विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार

लाखन सिंह

एम. ए., तृतीय सेमेस्टर

प्राच्य विद्या संकाय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

हरिद्वार — 249404, उत्तराखण्ड



प्रासंगिक एवं ऐतिहासिक विवरण

प्राचीन ज्ञानसिद्धि एवं विद्वत्पुरुषों की अमूल्य विरासत

आचार्य श्री गुरुजी महाराज की अमूल्य विरासत

आचार्य श्री गुरुजी महाराज



1975-2015

विभाग

कक्षा

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

आचार्य श्री गुरुजी महाराज

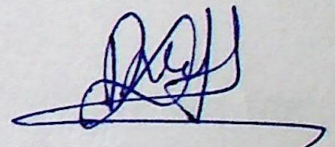
आचार्य श्री गुरुजी महाराज

03/11/15

॥ प्रमाण-पत्र ॥

प्रमाणित किया जाता है कि लाखन सिंह ने मेरे निर्देशन में एम0 ए0 प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विषय में तृतीय सेमेस्टर, वर्ष 2015-16 के प्रश्न पत्र MHS- 307 की पूर्ति हेतु लघु शोध प्रबन्ध 'गुप्त कालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं' शीर्षक पर शोध कार्य पूर्ण किया है।

शोध निर्देशन



डॉ0 देवेन्द्र कुमार गुप्ता

प्रोफेसर

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R
TH96M
52N-9

॥ ED-TOTAL ॥

संविधान ७७ अनुच्छेद १०८ के अन्तर्गत निर्वाचित हुए हैं।
के ०१-०१-०८ ई. में प्रथम बार निर्वाचित हुए हैं।
इन्होंने अपनी सार्वजनिक जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए
१६ मार्च १९७८ ई. को अपने कार्य से इस्तीफा दे दिया।

संविधान ७७

७७

संविधान ७७

संविधान ७७

संविधान ७७

संविधान ७७

आभार

“ॐ गुरु ब्रह्म गुरु विष्णुः गुरुदेव महेश्वरः

गुरु देवः परब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः ॥

प्रस्तुत कार्य में जिन विद्वानों ने मुझको अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है उन सबका धन्यवाद करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ, इस सन्दर्भ में सर्वप्रथम मैं अपने निर्देशक प्रो० देवेन्द्र कुमार गुप्ता का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ। जिनके द्वारा निर्देशित ग्रन्थों, पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं अथवा अन्य किसी भी प्रकार की सामग्री, स्रोतों से मैंने अपने इस कार्य के लिए सामग्री ग्रहण की है।

मैं प्रायः स्मरणीय माता श्रीमती गीता देवी एवं पिता श्री राजबीर सिंह एवं घर के अन्य सदस्यों का भी मैं धन्यवाद करता हूँ। मैं अपने उत्तरदाताओं को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने गम्भीरता से मेरे उद्देश्य को समझकर सहयोग किया।

लाखन सिंह

एम. ए., तृतीय सेमेस्टर

गुप्त कालीन हिन्दू प्रतिमाएं

विषयानुक्रमणिका

• प्रथम अध्याय	:	विष्णु प्रतिमाएं	1—26
• द्वितीय अध्याय	:	शिव प्रतिमाएं	27—49
• तृतीय अध्याय	:	स्कन्द एवं गणेश	50—65
• चतुर्थ अध्याय	:	देवी प्रतिमाएं	66—79
• सन्दर्भ ग्रन्थ सूची			80
• चित्र संकलन			81—84

ग्रामगीर डून्डी नमिक्त ताम्र

आणीमत्तुनामडी

85-1

ग्रामगीर डून्डी

आज्यात आणप •

84-25

ग्रामगीर डून्डी

आज्यात आणप •

83-08

आज्यात आणप

आज्यात आणप •

82-38

ग्रामगीर डून्डी

आज्यात आणप •

80

आज्यात आणप •

81-18

आज्यात आणप •

विष्णु-प्रतिमाए

ਭਾਸ਼ਾ-ਪ੍ਰਣਾਲੀ

विष्णु प्रतिमा

हिन्दू त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) में विष्णु जगत पालनकर्ता हैं, परन्तु भागवत अथवा वैष्णव सम्प्रदाय विष्णु को सर्वोच्च देवता के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं। वास्तव में भागवतों ने विष्णु को जिस रूप में स्वीकार किया उसमें अनेक शताब्दियां लगी। तीन स्वतन्त्र धाराओं के समिश्रण से भागवतों के विराट रूप विष्णु की रचना हुई :

1. वैदिक विष्णु
2. ब्राह्मणों एवं आरण्यकों के नारायण
3. सात्वत वंश के आराध्य-वासुदेव श्री कृष्ण

भागवत सम्प्रदाय के विकसित रूप में भगवान विष्णु के 5 रूप माने गये हैं।¹ पर भगवान के सर्वोच्च रूप का द्योतक है। पांचरात्रों के अनुसार पर ब्रह्म अद्वितीय, अनादि, अनन्त दुःखरहित तथा निःसीम सुखानुभूति रूप है। व्यूह उद्भूत रूप है, विभव का तात्पर्य अवतार रूप से है। अन्तर्यामी रूप अदृश्य और भक्तों के हृदय में स्थित रहता है।² अर्चा विग्रह रूप है।

विष्णु प्रतिमा का निर्माण

वैखानस आगम में विष्णु के ध्रुववेषों का उल्लेख है। इस विवरण के अनुसार विष्णु की प्रतिमा को 4 भागों में बांटा गया है-

1. योग
2. भोग
3. वीर
4. आभिचारिक

तत्पश्चात् मुद्राओं के आधार पर इन्हें 3 उपवर्ग में रखा गया है-

1. स्थानक
2. आसन

3. शयन

तदनन्तर गुणों के आधार पर इन्हें उच्च, मध्यम तथा निम्न कोटियों में विभक्त किया गया है।³ इस प्रकार विष्णु की प्रतिमाएं 36 प्रकार की होती हैं।

विष्णु की स्थानक प्रतिमा

विष्णु की स्थानक प्रतिमाओं का निर्माण कब हुआ यह कहना अनिश्चित सा ही है। सम्भवतः विष्णु की सर्वप्रथम स्थानक प्रतिमा पांचाल नरेश विष्णुमित्र की मुद्रा पर मिलती है। इस युग की स्थानक प्रतिमाओं में विष्णु के 4 या 8 हाथ प्रदर्शित किये गये। अष्टभुजी विष्णु की मूर्तियों की संख्या कम है। मथुरा संग्रहालय⁴ में दो तथा लखनऊ संग्रहालय में एक अष्टभुजी विष्णु मूर्ति सुरक्षित है। इन मूर्तियों के हाथों में क्या है यह निश्चित तौर पर कहना कठिन है।

गुप्तकाल में भी विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमा बनती रही। गुप्तकालीन विष्णु मूर्तियों में घुटने तक लटकती हुई बनमाला बनाई जाती थी। कुछ मूर्तियों में विष्णु को गदा देवी और चक्र पुरुष के ऊपर हाथ रखे दिखाया गया है। विदिशा में उदयगिरी के निकट बनी गुप्तकालीन मूर्ति में एक हाथ गदा देवी और दूसरा चक्र पुरुष पर रखा है। तीसरा हाथ टूटा है जो संभवतः अभय मुद्रा में होगा। चौथे हाथ में शंख है, उनकी छाती पर श्री वत्स का चिन्ह बना है। प्रयाग के समीप बनने वाली विष्णु मूर्तियां मथुरा में बनी मूर्तियों से कुछ भिन्न हैं। इन मूर्तियों का चौथा हाथ अभय मुद्रा के स्थान पर वरद मुद्रा में दिखाया गया है। गुप्तकाल तक विष्णु के हाथ में शंख, चक्र तथा गदा ही दिखाये गये थे। पद्म के स्थान पर अभय या वरद मुद्रा को दिखाया गया है।

गुप्तकाल में यद्यपि अष्टभुजी मूर्तियां नहीं मिलती तथापि वृहतसंहिता और पुराणों का यह विवरण सिद्ध करता है अष्टभुजी मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल और बाद के काल में होता रहा। विष्णु की द्विभुजी मूर्ति रूपवास से प्राप्त हुई है जिसके हाथों में शंख एवं चक्र है। विष्णु के योग, भोग, वीर तथा अभिचारिक स्थानक प्रतिमा का उल्लेख गोपीनाथ राव ने किया है।

1. योगस्थानक प्रतिमा

वैखानस आगम के अनुसार योग स्थानक प्रतिमा चतुर्भुज तथा गहरे रंग की होनी चाहिए। विष्णु के पिछले दाहिने हाथ में चक्र तथा अगला दायां हाथ अभय या वरद मुद्रा में पीछे वाले बांये हाथ में शंख तथा अगला बायंया हाथ कट्यवलम्बित होना चाहिए। उनके दाहिनी और बांयी ओर क्रमशः भृगु तथा मारकण्डेय तथा मंदिर की उत्तरी दीवाल पर पर ब्रह्मा की आकृति होनी चाहिए। महाबलीपुरम् में इस प्रतिमा का मध्यवर्गी चित्रण द्रष्टव्य है।⁵

2. भोग स्थानक प्रतिमा

यह प्रतिमा भी चतुर्भुज होनी चाहिए। इसके पीछे के दोनों हाथों में शंख, चक्र, अगला दाया हाथ, वरद तथा अभय मुद्रा में और अगला बांया हाथ कट्यवलम्बित मुद्रा में होना चाहिए। इस प्रतिमा के दाहिनी ओर श्री देवी हाथ में कमल लिए हुए तथा बांयी ओर भू-देवी हाथ में नील पद्म लिए हुए प्रदर्शित होती है। विष्णु की एक अतिसुन्दर भोग-स्थानक प्रतिमा खजुराहों संग्रहालय⁶ में सुरक्षित है। इसमें विष्णु पद्म, पीठ पर समभंग खड़े हैं और वे किरीट, मुकुट, रत्न कुण्डलों, केपूरों, कंकड़ों, वैजयन्ती माला, योपवीत और नुपूरों से अलंकृत है। उनके चार हाथों में पहला खण्डित है। दूसरे में गदा, तीसरे में चक्र और चौथे में शंख धारण किये हैं। मद्रास संग्रहालय एवं तिरयूट्टीपूर के शिव मंदिर की प्राचीन भित्ति पर इस प्रतिमा का निदर्शन द्रष्टव्य है।⁷

3. वीर स्थानक प्रतिमा

इस प्रतिमा में विष्णु के दो हाथों में शंख और चक्र तथा दो हाथों को किस प्रकार दिखाना चाहिए इस का विवरण नहीं मिलता है। इनके साथ ब्रह्मा, शिव, भृगु और मारकण्डेय की आकृतियां दिखाई जाती है।

4. अभिचारिक स्थानक प्रतिमा

इस प्रतिमा के दो या चार हाथ होने चाहिए। इसका रंग गहरा तथा वस्त्र काला होना चाहिए। इसके साथ अन्य कोई देवी-देवता नहीं बनाए जाते। अभी तक इस प्रकार की केवल एक

प्रतिमा वर्तमान जिले के चेतनपुर ग्राम से प्राप्त हुई है जो 7वीं शती की है। यह काले पत्थर की है। इसके अगले दाहिने हाथ में कमल और बांये हाथ में शंख दिखाया गया है। गले में बनमाला और हार के स्थान पर तापवीजों की एक विचित्र माला दिखायी गई है। विष्णु का लम्बा चेहरा बड़ी-बड़ी आंखें, हड्डियों के उभार और अपेक्षाकृत पिचके हुए पेट के कारण अन्य मूर्तियों से यह भिन्न है।

विष्णु की आसन प्रतिमा

विष्णु की आसन प्रतिमाओं का निर्माण कुषाण काल से ही हो चुका था। इस काल की मथुरा से दो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। एक में विष्णु कमल पर ललितासन में प्रदर्शित है। इनके 3 हाथों में शंख, चक्र, गदा है और चौथा हाथ अभय मुद्रा में है। दूसरी मूर्ति में दोनों पैरों को मोड़कर बैठे हुए दिखाये गये हैं। इनका एक हाथ गदा देवी पर, दूसरा चक्र पुरुष पर, तीसरा अभय मुद्रा में और चौथा खण्डित है। देवगढ़ की मूर्ति में कुण्डली मारे नाग पर विष्णु ललितासन में बैठे हैं। लक्ष्मी उनका चरण चम्पन कर रही हैं। मध्यकाल तक आते-आते आसन मूर्तियों की विविधता बढ़ गई है। पूर्वी बंगाल से प्राप्त मूर्तियों में विष्णु गरुड़ पर आसीन हैं।

1. योगासन-प्रतिमा

वैखानस आगम के अनुसार योगासन प्रतिमा में विष्णु का वर्णश्वेत हो, उनके चार हाथ हों और वे पद्मासन में विराजमान हों। वे जटामुकुट, हार, योपवीत, कुण्डलों तथा केयुरों से अलंकृत हों, उनके नेत्र कुछ उन्मीलित हों और दो प्राकृतिक हाथ योग मुद्रा में हों। इस आगम में यह भी स्पष्ट उल्लेख है कि उनके हाथ शंख और चक्र से रहित हों। योगासन विष्णु की पार्श्व मूर्तियों के रूप में शिव, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य, सनक और सनत्कुमार एवं भृगु और मारकण्डेय अथवा मारकण्डेय और भू-देवी के चित्रण हों। इस संदर्भ में मथुरा से प्राप्त योगासन मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है, विष्णु के आगे के दोनों हाथ योग मुद्रा में हैं। वे पद्मासन में हैं, पिछले हाथों में चक्र और गदा है। खजुराहो से विष्णु की एक अद्भुत योगासन प्रतिमा प्राप्त हुए हैं। इस प्रतिमा के दो हाथ खण्डित हैं, तिसरे में चक्र और चौथा हाथ होठों के कोने

पर शान्त कराने की मुद्रा में है। इस प्रकार की प्रतिमा का साहित्यिक विवरण अनुपलब्ध है। विष्णु की एक योगासन प्रतिमा वागली में कालेश्वर मंदिर में भी प्राप्त है।⁸

2. भोगासन-प्रतिमा

इस प्रतिमा में विष्णु को सिंहासन पर अपनी पत्नियों लक्ष्मी और भू-देवी के साथ प्रदर्शित किया जाना चाहिए। बाँयी ओर भू-देवी और दाँयी ओर लक्ष्मी होनी चाहिए। इस प्रकार की प्रतिमा बादामी के गुहा-मंदिर, कांजीवरम् के कैलाशनाथ, स्वामिन मंदिर तथा दाडीकोम्बू के वरदराज मंदिर आदि में निदर्शित है।⁹

3. वीरासन प्रतिमा

प्रतिमाशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के अनुसार वीरासन प्रतिमा में विष्णु को सिंहासनासीन होना चाहिए उनका बाया पैर मुड़ा हुआ तथा दाया पैर कुछ फैला होना चाहिए। उनके साथ भू-देवी और लक्ष्मी को इस प्रकार चित्रित किया जाना चाहिए कि उनके घुटने मुड़े हों। उनका एक हाथ सिंहकर्ण मुद्रा में होना चाहिए। उनके साथ अन्य देवी-देवता भी होने चाहिए। अयहोल के पाषाण चित्रणों में यह प्रतिमा द्रष्टव्य है।¹⁰

4. आभिचारिकासन प्रतिमा

इसमें 2 या 4 हाथ होना चाहिए। विष्णु को वेदिकासन पर बैठा और तमोगुण से युक्त बनाना चाहिए। उनका रंग नीला तथा वस्त्र काला होना चाहिए। उनके साथ अन्य कोई भी आकृति नहीं होनी चाहिए।

विष्णु की शयन-प्रतिमा

वैखानस आगम के अनुसार विष्णु की शयन-प्रतिमा श्याम-वर्ण और सुपुष्ट अंगवाली होनी चाहिए। उनका चौथाई भाग कुछ ऊपर उठा हो और तीन चौथाई भाग शेष-शैय्या पर शायी हो। उनका एक

दाहिना हाथ किरीट को स्पर्श करता अथवा मस्तक की ओर प्रसारित हो, और एक बांया हाथ शरीर के समानान्तर प्रसारित होकर जंघा पर सिति हो, दक्षिण पाद सीधाप्रसारित हो, और वाम कुछ झुका हो, कंधे के निकट लक्ष्मी बैठी हों और उकने चरणों के निकट भू-देवी हों। चरणों के निकट मधु और कैट्भ प्रहार करने के लिए तत्पर हों। विष्णु की नाभि से निकलें कमल पर ब्रह्मा आसीन हों।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में शेषशयी विष्णु पद्मनाभ नाम से वर्णित है। इस वर्णन के अनुसार पद्मनाभ जल के बीच पड़े शेष पर शयन करते हों, उनका एक चरण लक्ष्मी की गोद में और दूसरा शेष की गोद में रखा हों। उनकी नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा प्रदर्शित हों, और कमल-नाल से संलग्न मधु और कैट्भ आसुर हों।¹¹

अपराजित पृच्छा और रूपमण्डन में भी विष्णु के इस रूप का वर्णन किया गया है। अपराजित पृच्छा¹² के अनुसार किरीट, माला, हार, कुण्डलों और केयुरों से अलंकृत विष्णु शेष पर्यंक पर शयन करते हों। उनके चार हाथ हों- दाहिना एक सिर पर और दूसरा हत्कमल पर स्थित हों तथा बांया उर्ध्व एवं अधः क्रमशः चक्र और गदा से युक्त है।

विष्णु की शयन-मूर्तियों का निर्माण गुप्तकाल में सर्वप्रथम हुआ। 5 वीं शती की कानपुर के भीतर गांव के मंदिर से एक मूर्ति मिली है जिसमें विष्णु आदि शेष पर शयन कर रहे हैं। शेष दो फण, उन पर छाया कर रहे हैं। उनके नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा आसीन हैं। देवगढ़ के मंदिर में भी एक मूर्ति उत्कीर्ण है। इसमें विष्णु शेष शैया पर शयन कर रहे हैं और लक्ष्मी उनका पैर दबा रही है। लक्ष्मी के पीछे गदा देवी और चक्र पुरुष हैं उनके पार्श्व में नन्दी पर आसीन शिव-पार्वती, मयुरासीन कार्तिकेय और ऐरावत पर इन्द्र आसीन हैं इसी प्रकार मध्यकालीन भारत से अनेक शयन प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं जिसमें उदयगिरि के गुफा नं० 14 से प्राप्त मूर्ति, राजीम के राजीव लोचन मन्दिर की मूर्ति, मथुरा, कालिंजर, दिवारा के समीप जगन्नाथ जी मंदिर तथा नागपुर आदि से प्राप्त शयन-मूर्तियां दर्शनीय हैं।

योग-शयन प्रतिमा

आगमों के अनुसार योग-शयन प्रतिमा में विष्णु के दो हाथ होने चाहिए। उनका दाया पैर फैला हुआ और बाया पैर कुछ मुड़ा होना चाहिए। पैरों के पास मधु-कैटभ, और नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा आसीन होने चाहिए। इस प्रतिमा के सुन्दर उदाहरण महाबलीपुरम, श्रीरंगम, अयहोल आदि स्थानों पर द्रष्टव्य है।

भोग-शयन प्रतिमा

वैखानस आगम के अनुसार भोग-शयन प्रतिमा चतुर्भुजी होनी चाहिए। लक्ष्मी को उनके कंधे के निकट दिखाना चाहिए, जिनके दाहिने हाथ में कमल और बाया हाथ कटक मुद्रा में होना चाहिए। विष्णु के पैरों के निकट भू-देवी हो, जो उनके बांये चरण को स्पर्श करती हों। विष्णु के दाहिने और बांये भाग में क्रमशः मारकण्डेय एवं भृगु की प्रतिमाएं हों, उनके चरणों के निकट मधु और कैटभ हों, जो प्रहार करने के लिए तत्पर जान पड़े। विष्णु की नाभि से निकले पद्म पर ब्रह्मा आसीन हों, जिनके दाईं और पांच आयुध पुरुष तथा गरुड़ हों। गरुड़ के दाहिने, उपर की ओर सूर्य की प्रतिमा हों, दूसरी ओर ब्रह्मा के बांये पार्श्व में चन्द्र अश्विन बाल रूप में एवं तुम्बरू और नारद प्रदर्शित हों। साथ में दिक्पाल और चामर डुलाती हुई अप्सराएं भी उत्कीर्ण हों। भोग-शयन प्रतिमा का सर्वोत्तम निदर्शन झांसी जिले के देवगढ़ में स्थित विष्णु मंदिर में द्रष्टव्य हैं।

वीर शयन प्रतिमा

आगमों के अनुसार विष्णु के वीर शयन-प्रतिमा में भी उनके पैरों के निकट लक्ष्मी-भू-देवी को प्रदर्शित किया जाना चाहिए तथा पैरों के समीप ही मधु और कैटभ को हाथ जोड़े हुए दिखाना चाहिए।

आभिचारिक शयन-प्रतिमा

इस प्रतिमा में आदिशेष के केवल दो फण दिखाने चाहिए। विष्णु का रंग नीला होना चाहिए। उनके 2 या 4 हाथ हो सकते हैं। उनके साथ अन्य कोई भी देवता का चित्रण नहीं किया जाना चाहिए।

विष्णु का व्यूह-रूप

व्यूह रूप विष्णु का उद्भूत रूप है। भागवतों ने यह कल्पना की है कि विष्णु की छः गुण विद्यमान हैं-

1. ज्ञान
2. शक्ति
3. ऐश्वर्य
4. बल
5. वीर्य
6. तेज

इन छः गुणों में से दो-दो गुणों की प्रधानता होने पर तीन व्यूहों की सृष्टि होती है, जिनके काम हैं- संकर्षण, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य तथा वीर्य गुणों का और अनिरुद्ध में शक्ति तथा तेज गुणों का प्राधान्य रहता है। जगत का सर्जन तथा शिक्षण इनका मुख्य कार्य है। संकर्षण का कार्य है जगत की सृष्टि करना तथा एकांतिक मार्ग- पांचरात्र-सिद्धान्त-का उपदेश देना, प्रद्युम्न का कार्य है- इस मार्ग के अनुसार क्रिया की शिक्षा देना और अनिरुद्ध का कार्य है कि क्रिया के फल अर्थात्, मोक्ष के रहस्य का शिक्षण। वासुदेव को मिलाकर इन्हें चतुर्व्यूह कहा गया। संभवतः यह चतुर्व्यूह सिद्धान्त सर्वप्रथम दूसरी शती ई० पूर्व में व्यवस्थित हुआ, क्योंकि पतंजलि द्वारा इसका उल्लेख किया गया है।¹³ धीरे-धीरे व्यूहों की संख्या बढ़ती गई और गुप्तकाल के अन्त तक 4 से चौबीस होकर चतुर्विंशति व्यूह हो गई और बढ़े हुए इन व्यूहों को सम्प्रदाय के प्रधान देवता विष्णु के बीस नाम प्रदान किए गये। विष्णु के इन चौबीस व्यूहों की पृथक-पृथक बनी पूर्व तथा उत्तर-मध्य युगीन मूर्तियां प्रायः एक सदृश हैं, केवल उनके चार हाथों के लाँछनो- शंख, चक्र, गदा और पद्म में हुए उलट-फेर से उनकी पहचान की जाती है।

विष्णु का विभववाद (अवतारवाद)

विभववाद पांचरात्र, भागवत अथवा वैष्णव सम्प्रदाय की एक विशिष्ट देन है। भागवतों के अवतारवाद का बीज उत्तर वैदिक साहित्य में ही उपलब्ध होता है। भगवान का मनुष्य अथवा पशु के रूप में पृथ्वी

में अवतीर्ण होना और यहां अपने लक्ष्य की पूर्ति तक निवास करना अवतार कहलाता है। अवतार तीन प्रकार के होते हैं- पूर्णावतार, आवेशावतार एवं अंशावतार। पूर्णावतार का प्रतिनिधित्व राम और कृष्ण करते हैं, जो सम्पूर्ण जीवन के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। आवेशावतार के उदाहरण परशुराम हैं, जो मदोन्मत्त क्षत्रियों के मद का विनाश करने के लिए ही अवतीर्ण हुए थे और इस कार्य के सम्पादित होने के बाद अपनी भागवती शक्ति राम को समर्पित कर तप करने महेन्द्र पर्वत चले गये। विष्णु के आयुध, शंख, चक्र आदि जब भगवान के आदेश से मनुष्य जन्म लेकर सन्त साधु के रूप में अपने दैविक कार्य को पूरा करते हैं, तो वे अंशावतार कहे जाते हैं। अवतार सम्बन्धी भारतीय अभिव्यक्ति भगवद्गीता में हुई है।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे॥ (भगवद्गीता 4,7,8)

अवतारों की संख्या -

विष्णु के अवतारों की संख्या और सूची हमें महाभारत के प्राचीन भाग में नहीं मिलती। किन्तु उसके नारायणीय अंश में एक जगह केवल चार अवतार गिनाये गये हैं।¹⁴ दूसरी जगह उक्त संख्या में राम, भार्गव तथा रामदशरथ को जोड़कर छः कहे गये हैं और वही तीसरी जगह हंस, कूर्म, मत्स्य और कल्कि को जोड़कर संख्या दस कर दी गई है।¹⁵ हरिवंश पुराण में कहाभारत की पहली सूची के छः कहे गये हैं। वायुपुराण में पहले बारह अवतारों का उल्लेख है, जिनमें कुछ शिव और इन्द्र के अवतारों के प्रतीत होते हैं और फिर दूसरे स्थल पर इनकी संख्या दस कर दी गई है, जिनमें दत्तात्रेय और वेदव्यास भी सम्मिलित है।¹⁶ भागवत पुराण में अवतारों की तीन सूचियां, तीन भिन्न स्थलों पर मिलती हैं।¹⁷ पहली सूची में इनकी संख्या 22, दूसरी में 23 और तीसरी में 16 हैं। पहली सूची के नाम इस प्रकार हैं-

1. पुरुष

12. धन्वन्तरि

- | | |
|---------------|----------------|
| 2. वराह | 13. मोहिनी |
| 3. नारद | 14. नरसिंह |
| 4. नरनारायण | 15. वामन |
| 5. कपिल | 16. भार्गव राम |
| 6. दत्तात्रेय | 17. वेदव्यास |
| 7. यज्ञ | 18. दशरथ राम |
| 8. ऋषभ | 19. बलराम |
| 9. पृथु | 20. कृष्ण |
| 10. मत्स्य | 21. बुद्ध |
| 11. कूर्म | 22. कल्कि |

पुराणकार ने इस बात पर अधिक बल दिया है कि भगवान के असंख्य अवतार हुआ करते हैं- अवताराः ह्यसंख्येयाः हरेः। वराह पुराण में दस सर्वमान्य अवतारों की सूची मिलती है। किन्तु मत्स्यपुराण में केवल 7 अवतारों का ही उल्लेख हुआ है।¹⁸ किन्तु बाद में चलकर विष्णु के मुख्य 10 अवतारों को ही कला में अभिव्यक्त किया गया और ये ही निम्नलिखित दशावतार प्रायः सर्वमान्य हैं-

- | | |
|-----------|------------|
| 1. मत्स्य | 6. परशुराम |
| 2. कूर्म | 7. राम |
| 3. वराह | 8. कृष्ण |
| 4. नरसिंह | 9. बुद्ध |
| 5. वामन | 10. कल्कि |

अवतारवाद और विकासवाद -

भारतवर्ष के साथ-साथ बाहर भी परमसत्ता के अवतार ग्रहण करने की मान्यता की जड़ें गहरी मिलती हैं। सागर मन्थन का पौराणिक आख्यान जगत् के उस विकास का सूचक है, जब जल से भूमि का

उदय हो रहा था। जल से भूमि के इस उदय होने में सृष्टि-विकास के तृतीय सोपान का मर्म छिपा है, जो वराहवतार ने सम्पन्न किया। इसी प्रकार नरसिंहावतार में मानव-पशु के विकास की कहानी पढ़ी जा सकती है। पुलासकर महोदय ने दशावतार का सम्बन्ध मानव के क्रमिक विकास से बतलाया है। उनका कथन है कि मत्स्यावतार मानव की प्रारम्भिक अवस्था का और कूर्म तथा वराह अर्द्धविकसित अवस्था का द्योतक है। नरसिंह तथा वामन अवतार गुफाओं तथा जंगलों में रहने वाली असभ्य एवं अर्द्धसभ्य जातियों का प्रतीक हैं, परशुराम अवतार इधर-उधर घूमने वाली खानाबदोशी एवं शिकारी जातियों का प्रतीक हैं, राम तथा कृष्ण नगर में रहने वाली सभ्य एवं पूर्ण विकसित अवस्था को प्रकट करते हैं।

दूसरी बात यह है कि ये अवतार विकासवाद के सिद्धान्त से बहुत साम्य रखते हैं। श्री आनकचन्द ने डार्विन के मत से इसमें बहुत कुद एकता दिखायी थी-

डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त : विशेषता	अवतार
जीव सबसे पहले जल में उत्पन्न हुआ। जीवन का पहला विकास जलजीव थे, मुख्यतः मछली।	मत्स्य
जल-स्थल दोनों में रह सकने वाले जीव : कछुआ, मगर, केकड़े	कूर्म
जल संसर्ग त्यागकर स्थल पर रहने वाले जीव : वराह, हिरन, अश्व आदि चौपाए	वराह
वे पशु जो दो पैरों पर चलने का प्रयत्न करने लगे, बन्दर, कंगारू, रीक्ष इत्यादि	नृसिंह, जिनके पैर मनुष्य के थे
अविकसित मनुष्य	वमन
शारीरिक दृष्टि से विकसित होकर जब उसमें बुद्धि का विकास प्रारम्भ हुआ, जबकि वह क्रूर तथा असभ्य था।	परशुराम
मस्तिष्क तथा मनवीय गुणों का जैसे- सहिष्णुता, प्रेम, धार्मिक उत्साह, दया आदि के विकास से युक्त।	राम

मस्तिष्क का बहुत विकास - राजनीति, दर्शन, कला आदि का पूरा विकास	कृष्ण
एकमात्र बुद्धिवादी	बुद्ध
पूर्ण विकसित मनुष्य-भविष्य में होगा	कल्कि

इस प्रकार अवतारवाद तथा इस युग के प्रतिनिधि-सिद्धान्त विकासवाद में समानता मिलती है।

दशावतार प्रतिमा का निर्माण -

दशावतार प्रतिमा का निर्माण कुषाण काल से प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम कुषाण-कला में कुछ अवतारों जैसे - वराह और कृष्ण के दर्शन होते हैं। वराह अवतार की ही केवल एक मूर्ति है जो इस काल की है। कृष्ण के अवश्य अनेक चित्रण उपलब्ध हैं। इनके अतिरिक्त बलराम मूर्तियों भी हैं। जिनका निर्माण शुंगकाल से ही होने लगा था। किन्तु शुंगकाल और कुषाणकालीन इन मूर्तियों में बलराम का वीर रूप ही प्रदर्शित किया गया है। कुषाण काल के बाद गुप्तकाल तक आते-आते विष्णु के अवतारों के सम्बन्ध में साहित्यिक ग्रन्थों तथा अभिलेखों से अनेकशः विवरण प्राप्त होने लगता है। रघुवंश में दशावतारों के सम्बन्ध में निर्देश किया गया है।¹⁹ वृहत्संहिता²⁰ में राम अवतार की प्रतिमा निर्माण के सम्बन्ध में बतलाया गया है कि उनकी प्रतिमा बीस अंगुल की निर्मित की जानी चाहिए। एरण की वराह प्रतिमा में हूण शासक तोरमाण का लेख खुदा हुआ है, जिसमें वराह अवतार धारण कर विष्णु के द्वारा पृथ्वी के उद्धार की कहानी वर्णित है। गुप्तकाल में विष्णु के दशावतारों में वराह, नरसिंह, वामन, राम, बलराम²¹ तथा कृष्ण अवतार की प्रतिमाओं का निर्माण व्यापक स्तर पर किया जाने लगा। गुप्तोत्तर काल के बाद दशावतारों के चित्रण का प्रचलन अधिक व्यापक हो गया। ये चित्रण दो प्रकार के हैं : सभी अवतारों के सामूहिक और उनमें से अनेक के पृथक-पृथक रूप मिलते हैं।

मत्स्यावतार

प्रायः सभी परम्पराओं के अनुसार प्राचीनतम अवतार मत्स्य है। स्वतन्त्र रूप से मत्स्य पूजा के अनेक उल्लेख प्राप्त हुए हैं। मत्स्य का भारतीय, असीरियन, फिलीस्तीन और मिश्र की सभ्यता में प्रमुख स्थान

हैं। इसके अतिरिक्त प्रलय की कथा भी अनेक देशों की पौराणिक गाथाओं में मिलती है जिसका सम्बन्ध मत्स्यदेव से अवश्य है। विष्णु के मत्स्यावतार की प्रतिमा दो प्रकार से निर्मित की जाती थी -

1. मत्स्यविग्रह (साधारण मत्स्य के सदृश)
2. नरमत्स्य मिश्रित विग्रह (उर्ध्वभाग नराकृत और अधः भाग मत्स्याकृत)

मत्स्यावतार का प्राचीनतम चित्रण सारनाथ और मथुरा से प्राप्त होता है। सारनाथ के एक स्तम्भ पर मत्स्यावतार का चित्रण किया गया है। मथुरा से प्राप्त चित्रण में नरमत्स्य मिश्रित विग्रह में चित्रण किया गया है। राव महोदय ने गढ़वा नामक स्थान से प्राप्त नर-मत्स्य विग्रह प्रतिमा का उल्लेख किया है। जिसमें प्रतिमा का आधा शरीर मनुष्य का है और आधा मत्स्य का है। प्रतिमा चतुर्भुजी है, उसके पीछे के हाथों में शंख, चक्र तथा आगे के हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में है। ग्यारहवीं शताब्दी की चम्बा से एक बहुत ही सुन्दर मत्स्यावतार की प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसमें कमल स्तम्भ के ऊपर मत्स्य की आकृति दर्शायी गई है, स्तम्भ पर त्रिमुखी ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं की आकृतियां उकेरी गई हैं। मत्स्य के सिर के नीचे लक्ष्मी की आकृति चित्रित की गई है।

कूर्मावतार

भारत में भी कूर्म द्वारा पृथ्वी को उठाने की अनुश्रुति है। समुद्र मंथन के समय विष्णु ने कूर्म रूप धारण कर मंदराचल को धारण किया। कूर्मावतार की प्रतिमा भी दो प्रकार से निर्मित होती है-

1. कूर्म विग्रह में (साधारण कूर्म के सदृश)
2. नरकूर्म मिश्रित विग्रह में (ऊपरी आधार भाग नर और शेष आधा कूर्म के सदृश)

मिश्रित विग्रह की मूर्ति में चार हाथ होते हैं- दो क्रमशः वरद और अभय मुद्रा में तथा दो शंख और चक्र से युक्त। ऐसी प्रतिमा किरीट-मुकुट तथा सभी आभूषणों से अलंकृत होती। खजुराहो से कूर्मावतार की दो स्वतन्त्र प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। इसमें से एक प्रतिमा में विष्णु को योगासन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, उनके पद्मासन स्थित पादों के नीचे कूर्म की आकृति है। दूसरी पृथक मूर्ति में पद्म-पत्र के ऊपर एक साधारण कूर्म स्थित है, जिसके गले में इकहरी मुक्तमाला है। कूर्म पृष्ठ पर एक दण्डाकार

मथानी आधारित है। इस मथानी पर एक सर्प की नेती लिपटी है जिसके एक छोर को एक देवता और दूसरे को एक दैत्य पकड़े हैं, मानों वे सागर मंथन कर रहे हों। पुरुष-विग्रह में निर्मित देव-दैत्य की प्रतिमाएं समरूप हैं। दोनों के गले में इकहरी मुक्तमाला है और सिर पर मुकुट रखे होने के संकेत हैं, जो अब खण्डित हो गये हैं एक के चरण पद्म-पत्र पर रखे हैं और दूसरे के कूर्म के पीछे छिपे हैं। सागर मंथन का यह एक सुन्दर चित्रण है।

वराह अवतार

वराह अवतार की पौराणिक कथा का बीज ऋग्वेद में विद्यमान है, जिसमें एमूष नामक वराह का उल्लेख है। यह वराह असुरों के कोष की रक्षा करता है। तैत्तरीय आरण्यक से ज्ञात होता है कि एमूष ने पृथ्वी को ऊपर उठाया और वह पृथ्वी का पति है। इस ग्रन्थ के अनुसार देवताओं ने वराह के द्वारा पृथ्वी को असुरों से प्राप्त किया।²² अथर्ववेद में वराह का सम्बन्ध पृथ्वी के उद्धार से मिलता है।²³ तैत्तरीय संहिता²⁴ तथा शतपथ ब्राह्मण²⁵ इत्यादि परवर्ती वैदिक साहित्य में प्रजापति के वराहवतार धारण कर जल से धरती के उद्धार के विवरण है। रामायण में भी प्रजापति के वराह रूप में इस कर्म का उल्लेख है। किन्तु बाद में चलकर वराह में विष्णु का अवतार मान लिया गया। अग्नि पुराण में यह उल्लेख किया गया है कि वराह का रूप धारण कर विष्णु ने पृथ्वी की रक्षा करने से पूर्व हिरण्याक्ष नामक राक्षस का वध किया था। भागवत पुराण के अनुसार विष्णु ने प्रलय जल में डूबी हुई पृथ्वी का उद्धार करने के लिए सकल यज्ञमय वराह-शरीर ग्रहण किया था।

वराह प्रतिमा में आकृति का पूरा शरीर वराह का होता है। शिल्परत्न में वराह मूर्ति के विषय में निर्देश है कि तीक्ष्ण डाढ़ों, चौड़े स्कन्ध तथा उर्ध्व रोमों से युक्त महाकाय सूकर की भांति निर्मित होनी चाहिए। अपराजित पृच्छा में वराह मूर्ति का विस्तृत विवरण है। जहां वराह के डाढ़ के अग्रभाग में लक्ष्मी के होने का उल्लेख किया गया है।

गुप्तकाल में वराह मूर्तियों का बनना अधिक प्रारम्भ हो गया। इस काल के शिल्पियों द्वारा उत्कीर्ण उदयगिरी की विशाल नृवराह मूर्ति विशेष दर्शनीय हैं इसमें वराह आदिशेष के ऊपर पैर रखकर खड़े हैं। उनके बांये कंधे पर पृथ्वी स्त्री के रूप में विराजमान है। पृथ्वी की आकृति अत्यन्त कमनीय है।

पार्श्व और पृष्ठ भाग में गंगा, यमुना और असुर का चित्रण किया गया है। इस मूर्ति में नृ वराह अपना मुख उठाकर पृथ्वी की ओर देख रहे हैं। यह मूर्ति गुप्तकालीन शिल्प की अनुपम रचना मानी जाती है। एरण में एक विशाल वराह प्रतिमा प्राप्त हुई है जिस पर हूण शासक तोरमाण का लेख उत्कीर्ण है। खजुराहो के वराह मंदिर में उत्कीर्ण वराह अवतार की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। वराह के सम्पूर्ण शरीर पर हिन्दू देवी-देवताओं जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, लक्ष्मी, सरस्वती, वीरभद्र और गणेश के साथ सप्तमातृकाओं, अष्टदिक्पालों, अष्टवसुओं, नवग्रहों, नागों, गणों, जलदेव और देवियों, भक्तों आदि की कुल मिलाकर 674 प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।

वैखानस आगम में वराह मूर्तियों को अन्य तीन प्रकारों में बांटा गया है-

1. भू-वराह - भूवराह प्रतिमा चतुर्भुज होती है। उसका मुख वराह के समान तथा शरीर मनुष्य जैसा निर्मित किया जाता है। उनके दो हाथों में शंख तथा चक्र दिखाये जाते हैं, तीसरा हाथ उनके मुड़े हुए घुटने पर और चौथा हाथ पृथ्वी के कटि को लपेटता हुआ प्रदर्शित होता है। पृथ्वी के हाथ अंजलि मुद्रा होते हैं। उनके चेहरे पर लज्जा प्रसन्नता का भाव दर्शाया जाता है।
2. यज्ञ-वराह - इसमें चार भुजाएँ²⁵ प्रदर्शित की जाती हैं। वे सिंहासन पर बैठे हुए दिखाये जाते हैं और उनके दाहिनी ओर लक्ष्मी आसीन होती है। लक्ष्मी के हाथ में कमल होता है तथा दूसरी ओर भू-देवी नीलोत्पल लिए होती है, इस प्रतिमा में वराह के हाथों में शंख और चक्र प्रदर्शित किये जाते हैं
3. प्रलय-वराह- प्रलय वराह में देवता को सिंहासन पर बैठे हुए प्रदर्शित किया जाता है। उनके दो हाथों में शंख और चक्र तीसरा अभय मुद्रा में और चौथा जंघा पर स्थित होता है। सिंहासन के दाहिनी ओर कमल धारणी भू-देवी आसीन होती है।

नरसिंह अवतार

नरसिंह अवतार एक स्वतन्त्र देवता प्रतीत होते हैं जिनकी एकता विष्णु के साथ की गई। बलि के लिए कहा गया है कि वह नृसिंह का उपासक था। विष्णु के दशावतारों में चौथा नरसिंह अवतार है।

प्रतिमाशास्त्र में नरसिंह अवतार प्रतिमा के तीन प्रकार बताये गये हैं-

1. गिरिज नरसिंह - इसमें नरसिंह पद्मासन पर उत्कृष्टिकासन में अथवा सिंहासन पर ललितासन में अकेले बैठे हुए दिखाये जाते हैं। उनके पैर योगपट्ट से बंधे होते हैं। इसमें दो या चार भुजाएं प्रदर्शित की जाती हैं जिसमें दो भुजाओं में शंख, चक्र और दो घुटने तक फैले होते हैं।²⁶ शिल्परत्न के अनुसार दो हाथों में गदा और चक्र तथा दो हाथों में शंख, चक्र होना चाहिए।²⁷
2. स्थौण-नरसिंह - वैखानस आगम²⁸ के अनुसार यह मूर्ति त्रिभंग स्थानक मुद्रा में और बारह अथवा सोलह भुजाओं से युक्त है। इसमें नरसिंह की बाईं जंघा पर हिरण्यकश्यपु स्थित हों, जिसका उदर नरसिंह अपने दो हाथों द्वारा विदारित कर रहे हों। नरसिंह का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में हो और दूसरा खड्गधारी हो। वे एक बांये हाथ से हिरण्यकश्यपु का मुकुट पकड़े हों और दूसरे को उठाकर दैत्य के पैरों को पकड़े हों, और अन्य दो हाथों में, एक बांया और एक दाहिना कानों तक उठे हों, जिनमें दैत्य के पेट से निकाली गई आंते पुष्पमाला की भांति लिए हों। हिरण्यकश्यपु के हाथों में खड्ग और खेटक स्थित हों। नरसिंह के दांये-बांये बगल में श्री देवी, भू-देवी, नारद तथा अंजलि मुद्रा में हाथ जोड़े प्रह्लाद खड़े प्रदर्शित होने चाहिए। यदि मूर्ति अष्टभुजी हो तो दो हाथ हिरण्यकश्यपु का उदर विदारित करने में लगे हों, चार में शंख, गदा चक्र और पद्म हों, शेष दो में पुष्पमाला के सदृश हिरण्यकश्यपु की आंते हों।
3. यानक नरसिंह - इसमें नरसिंह को गरुड़ के स्कन्धों अथवा आदिशेष की कुण्डलियों पर आसीन निर्मित किया जाता है। इसमें देवता के दो या चार भुजाएं प्रदर्शित की जाती हैं। दो में शंख, चक्र और दो घुटने तक फैले रहते हैं। देवता का मुख सिंह का और शेष शरीर मनुष्य का होता है।

नरसिंह अवतार की प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल में हुआ। नरसिंह की प्राचीनतम प्रतिमा बसाढ़ से प्राप्त मुहर पर बनी है।²⁹ इसमें ऊपर का भाग सिंह का तथा नीचे का शरीर मानव का है। वे एक

ऊंचे आसन पर ललितासन मुद्रा में आसीन हैं। उनका बाया पैर मुड़ा हुआ है तथा दाहिना नीचे की तरफ लटकता हुआ है। उनका दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है तथा बाया घुटने पर स्थित है। आसन पर एक लेख लिखा हुआ है जो स्पष्ट नहीं है। देवगढ़ से भी नृसिंह की एक मूर्ति प्राप्त हुई है जिसमें वे एक पैर मोड़कर आसन पर बैठे हैं।

खजुराहों से प्राप्त द्वादशभुजी एक मूर्ति में नरसिंह प्रत्यालीढ़ मुद्रा में खड़े हैं : वाम पाद पीछे प्रसारित है और संकुचित दक्षिण पाद एक असुर द्वारा धारण की गई खेटक पर स्थित है। उनका सिर सिंह का और देह शरीर का है। उनकी जंघाओं पर हिरण्यकश्यपु पड़ा है। नरसिंह अपने दो हाथों के नखों से उसका उदर विदिर्ण करते प्रदर्शित है। उनके शेष दस हाथ खण्डित है।

खजुराहों से ही चौंसठ भुजाओं से युक्त भी एक नरसिंह मूर्ति³⁰ उपलब्ध हुई है। इसमें अतिभंग खड़े नरसिंह अपने एक बायें हाथ से हिरण्यकश्यपु की बाईं भुजा पकड़े प्रदर्शित हैं। शेष सब हाथ खण्डित अवस्था में है। हिरण्यकश्यपु उनकी बाईं जंघा पर पड़ा है। उसकी प्रतिमा भी खण्डित है किन्तु उसका विदारित उदर और उससे बहते रूधिर का चित्रण अभी भी द्रष्टव्य है। प्रतिमा शास्त्र के ग्रन्थों में छह हाथ वाले नृसिंह प्रतिमा का विवरण नहीं मिलता है किन्तु मध्यप्रदेश के राजीम में राजवलोचन मन्दिर से नृसिंह की 6 भुजाओं वाली प्रतिमा प्राप्त हुई है।

वामन अवतार

विष्णु के पांचवे अवतार की प्राचीनता वैदिककाल तक जा पहुंचती है। क्योंकि आदित्य, विष्णु की त्रिविक्रम पदवी से ही इस अवतार के सम्पूर्ण कथानक का उदय है। विष्णु एक वामन रूप धारण कर बलि के यज्ञ में पहुंचे और उनसे तीन पग भूमि की भिक्षा मांगी। बलि के भिक्षादे देन पर वामन ने विराट रूप धारण कर प्रथम पग में भू-लोक, दूसरे में अंतरिक्ष लोक और तीसरा पग बलि के मस्तक पर रखा जिसके प्रहार से वह पाताल चला गया और इन्द्र पुनः प्रतिष्ठित हो गये।

वामन अवतार की मूर्तियां दो प्रकार की होती हैं।

1. वामन प्रतिमा - विष्णुधर्मोत्तर पुराण³¹ के अनुसार वामन भगवान छोटे अवयवों और मोटे शरीर वाले अर्थात् वामनाकृत निर्मित होने चाहिए। उनका शरीर दुर्वा घास के सदृश श्याम हो और वे कृष्ण अजिनोपवित धारण किये हों। वे दण्डधारी और अध्ययन को उद्यत हों। अग्निपुराण³² में वामन प्रतिमा छत्र और दण्डधारी वर्णित है। उत्तर भारतीय इस विवरण के विपरीत दक्षिण भारतीय वैखानस आगम में यह उल्लेख है कि वामन ब्रह्मचारी बालक के रूप में निर्मित हों, जिसके सिर पर शिखा हो और कौपीन, मेखला, कृष्ण अजिनोपवित धारण किये हों तथा साथ में पुस्तक लिए हों। उनके छत्र और दण्डधारी दो भुजाएं हों। शिल्परत्न³³ में इन हाथों में छत्र और कमण्डल होने का उल्लेख है।
2. त्रिविक्रम प्रतिमा- विष्णुधर्मोत्तर पुराण³⁴ के अनुसार त्रिविक्रम का वर्ण जलपूर्ण मेघ के समान हो, उनके हाथों में दण्ड, पाश, शंख, चक्र, गदा और पद्म हो, जिनका प्रदर्शन आयुध-पुरुषों के रूप में न होकर प्राकृतिक हो। उनके विस्फारित नेत्रों से युक्त एक उर्ध्वमुख हो।

वामन प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तकाल से आरम्भ हुआ। गुप्तकालीन एक वामन प्रतिमा³⁵ प्रयाग संग्राहलय में सुरक्षित है। जिसमें देवता याज्ञोपवीत और मृगचर्म धारण किये हुए हैं। वामन अवतार की एक प्रतिमा देवगढ़ के दशावतार मंदिर से प्राप्त हुई है, जिसमें विष्णु सर्प कुण्डी के मध्य में स्थित हो। इसी प्रकार की एक प्रतिमा भुवनेश्वर के उदयगिरी गुफा से प्राप्त हुई है। मध्यप्रदेश के रायपुर जनपद के पास से त्रिविक्रम की एक प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसी प्रकार बंगाल के अब्दुलपुर, गुजरात के मोढेरा मंदिर, नेपाल के काठमांडू से तथा चम्बा से भी त्रिविक्रम की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। मथुरा कला संग्रहालय में दो गुप्तकालीन त्रिविक्रम प्रतिमाएं हैं, जिसमें देवता का दाहिना पैर भूमि पर और बायां कंधे तक ऊपर उठा है। बादामी में त्रिविक्रम की एक अष्टभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई है।

परशुराम अवतार

विष्णु के दशावतारों की सूची में परशुराम की गणन की गई है। पौराणिक कथाओं के अनुसार परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित किया था। भागवत पुराण में बतलाया गया है कि विष्णु ने परशुराम के रूप में स्वयं ही अवतार धारण किया था।³⁶ परशुराम केवल आवेशावतार है, जिसने अपना

अवतारपन दाशरथि राम को समर्पित कर दिया। परशुराम के जीवन-वृत्त से सम्बन्धित विवरण हमें महाभारत³⁷ एवं रामायण³⁸ में प्राप्त होते हैं।

परशुराम अवतार प्रतिमा के विषय में लक्षण ग्रन्थों में बहुत मतभेद ही है। प्रतिमा विज्ञान के ग्रन्थों में उनके दो हाथों का विधान है। उनके दायें हाथ में परशु होना चाहिए, जटामुकुट के साथ वे यज्ञोपवीत धारण किये हुए हों, उनका वस्त्र सफेद और रंग लाल होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार परशुराम को जटामुकुट एवं मृग-चर्म के युक्त परशुधारी रूप में दिखाना चाहिए। अग्नि पुराण का विवरण है कि चतुर्भुजी परशुराम प्रतिमा के हाथों में खड्ग, परशु, धनुष एवं बाण प्रदर्शित किया जाना चाहिए। रूपमण्डन भी परशुराम को जटा, अजिन और परशु से युक्त वर्णित करता है। वैखानस आगम परशुराम को द्विभुजी बनाने का निर्देश करता है, उनके अनुसार उनके दाहिने हाथ में परशु और बायां सूचीहस्त मुद्रा में होना चाहिए। उनका वर्णलाल तथा वस्त्र सफेद हो, वे जटामुकुट, यज्ञोपवीत तथा सभी आभूषणों से अलंकृत हों।

परशुराम अवतार की स्वतन्त्र मूर्तियां अत्यल्प हैं। अधिकांशतः दशावतार पट्टों पर इनका दर्शन होता है।⁴⁰ गुजरात राज्य में अमरेली के समीप टिम्बा नामक ग्राम से गुप्तकालीन एक परशुराम की प्रतिमा प्राप्त हुई है, किन्तु वह भग्न रूप में है, जिससे उसका पूर्ण विश्लेषण संभव नहीं प्रतीत होता, किन्तु उनके दाहिने हाथ में परशु प्रदर्शित किया गया है। ढाका के पास रानीहारी से परशुराम की एक अद्वितीय महत्व की चतुर्भुज प्रतिमा प्राप्त हुई है, जिसके हाथों में परशु, शंख, चक्र तथा गदा प्रदर्शित किया गया है।

राम अवतार

रावण संहार करने के लिए विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया था। वाल्मीकी रामायण में राम के सम्पूर्ण जीवन का क्रमिक विवेचन है। एक महान लोकनायक के रूप में राम प्राचीनकाल से ही माने गये थे। जातक कथाओं में राम की कथा कुछ विकृत रूप से दशरथ जातक में वर्णित है। रामायण में राम के स्वरूप विस्तार के मुख्यतः दो रूप हैं- नररूप एवं ईश्वर रूप। प्रतिमा शास्त्रीय ग्रन्थों के विवरणों से स्पष्ट होता है कि राम के प्रतिमा निर्माण में कोई विशेष जटिलता नहीं थी। वराहमिहीर ने

वृहत्संहिता में मात्र इतना ही बतलाया है कि राम की प्रतिमा 120 अंगुल लम्बी निर्मित होनी चाहिए। अग्निपुराण राम को द्विभुज अथवा चतुर्भुज दोनों ही रूपों में प्रदर्शित करता है। उनके हाथों में धनुष, बाण, खड्ग और शंख होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार भी राम को द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही रूपों में दिखाया जा सकता है। चतुर्भुज रूपों में उनके हाथों में धनुष, बाण, खड्ग एवं शंख होने चाहिए। वे राजपुरुष के रूप में किरीट-मुकुट धारण किये हुए हों। साथ में लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भी उसी वेश में हों, किन्तु किरीट-मुकुट न धारण किये हो। वैखानस आगम में राम की द्विभुजी प्रतिमा का ही वर्णन किया गया है। इसके अनुसार किरीट-मुकुट तथा अन्य आभूषणों से युक्त, धनुष-बाणधारी राम को त्रिभंग मुद्रा में प्रदर्शित किया जाना चाहिए। उनके बायें पार्श्व में निलात्पल लिए हुए सीता को और साथ में लक्ष्मण तथा हनुमान को भी दिखाना चाहिए।

गुप्त युग से पूर्व तक राम की स्वतन्त्र प्रतिमाएं नहीं प्राप्त होती हैं। गुप्तकाल में रामायण की घटनाएं शिलापट्टों एवं मन्दिरों में उत्कीर्ण की जाती थी। गुप्तकाल में रामायण की घटनाएं शिलापट्टों एवं मन्दिरों में उत्कीर्ण की जाती थी। झांसी जिले के ललितपुर परगने में स्थित देवगढ़ के गुप्तकालीन दशावतार मंदिर में राम की लीलाओं का कई जगह अंकन किया गया है। दशावतार मन्दिर के द्वार-फलक पर राम के द्वारा अहिल्या के उद्धार की कथा का सुन्दर निदर्शन प्रस्तुत है। जिसमें फलक की पृष्ठभूमि पर वृक्षों और लताओं को उत्कीर्ण कर अरण्य का दृश्य उपस्थित किया गया है। एक पीठिका पर राम को तथा दूसरी पर विश्वमित्र को असीन दिखाया गया है। पार्श्व भाग में लक्ष्मण सिति हैं ओर पाषाणवत अहिल्या राम के चरणों के नीचे अधिष्ठित हैं।

वस्तुतः गुप्त काल के अन्त में राम की स्वतन्त्र प्रतिमाएं निर्मित होने लगी थीं। राम और सीता की मध्ययुगीन एक सुन्दर आलिंगन प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में सुरक्षित है। खजुराहो से प्राप्त राम की छः स्वतन्त्र प्रतिमाओं का उल्लेख रामाश्रय अवस्थी ने किया है। जिसमें पांच में राम अकेले और एक में सीता और हनुमान के साथ प्रदर्शित हैं। ग्यारहवीं शती ई. के ओसिया के अम्बामाता मन्दिर में राम और सीता की स्थानक मुद्रा में उत्कीर्ण प्रतिमा में चतुर्भुजी राम विष्णु के आयुधों को धारण करने के साथ एक हाथ से सीता को आलिंगन में लिये हैं, इस प्रतिमा में राम के दाहिने पार्श्व में कटि-मुख

हनुमान को भी प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार राम, लक्ष्मण और सीता को एक पत्थर की चौरस पट्टिया पर अति सुन्दर ढंग से दिखाया गया है, जो राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है। इसमें राम और लक्ष्मण चतुर्भुजी हैं। तथा भगवान विष्णु के आयुध को धारण किये हैं। वस्तुतः लक्ष्मण के मुख पर सर्प कुण्डली को प्रदर्शित किया गया है। सर्प के माध्यम से लक्ष्मण को शेष के अवतार के रूप में दिखाया गया है।

कृष्णावतार

ये बलराम के भाई थे। प्रारम्भ में वृष्णि वंश के नायक के रूप में अपने कुल में पूजित हुए, किन्तु विस्तार होने से वे एक बड़े सम्प्रदाय के इष्ट के रूप में विकसित हुए। निश्चित ही ई. सन् के पूर्व में यह विकास हो चुका था। भागवत, सात्वत, पंचरात्र, वैष्णव धर्म की मुख्य धारा कृष्ण से सम्बन्धित है। नारायण, विष्णु आदि अन्य धाराओं को मिला कर बढ़ने वाला सम्प्रदाय मुख्यतः वासुदेव-कृष्ण के पूजकों का ही था। वासुदेव-देवतकी के पुत्र कृष्ण, विष्णु के आठवें अवतार माने गये हैं। उनका जीवन चरित्र हरिवंश, भागवत, विष्णु तथा अन्य पुराणों में प्राप्त होता है।

कुषाण काल से ही कृष्ण की कथाओं का अंकन प्रारम्भ हो गया था। कृष्ण जन्माष्टमी की कथा का प्राचीनतम चित्रण दूसरी-तीसरी शताब्दी के एक खण्डित चित्र में मिलता है, जो मथुरा संग्रहालय में संग्रहीत है। मथुरा संग्रहालय में एक पट्ट पर वासुदेव द्वारा कृष्ण को सिर पर रखे हुए, यमुना पार करते हुए दिखाया गया है। दूसरे में अश्वरूपधारी केशी राक्षस को लात मारते हुए दिखाया गया है। गुप्तकाल में भी यह परम्परा चली है। इस काल की भारत कला भवन, काशी में माखनचोर कृष्ण एवं गोवर्धनधारी कृष्ण की दो मूर्तियां संग्रहीत हैं। कालियमर्दन करते हुए मथुरा एवं राज्य संग्रहालय लखनऊ में कृष्ण की लीलाओं का चित्रण है- जैसे कृष्णजन्म, शकटलीला इत्यादि। राजस्थान में मण्डोर से प्राप्त दो द्वार स्तम्भों पर कृष्ण लीलाएं उत्कीर्ण हैं, जिन्हें इस प्रकार बतलाया गया है-

1. गोवर्धनधारी कृष्ण
2. माखनचोर कृष्ण
3. छोटे पैरों से गाड़ी उलटते हुए बाल कृष्ण



03.231

4. नग को नाथते हुए कृष्ण इत्यादि।

बदमी, पहाड़पुर एवं त्रिपुरी के मंदिरों में कृष्ण की लीलाओं का अंकन है। खजुराहों में तो कृष्ण कद्वारा पूतना वध, शकटभंग, तृणावर्त वध, यमलार्जुन उद्धार, वत्सासुर-वध, कालियमर्दन, अरिष्टासुर-वध, कुब्जानुग्रह, कुवलयपीड-वध, चाणूर-युद्ध, शल-युद्ध आदि की अत्यन्त सुन्दर मूर्तियां अंकित की गई हैं।

बलराम-अवतार

पुराणों में इन्हें कृष्ण का बड़ा भाई बतलाया गया है बलराम के अनेक पर्याय साहित्य में मिलते हैं। जिनमें मुख्य संकर्षण हैं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संकर्षण तथा उनके अनुयायियों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। बलराम की सबसे प्राचीनतम मूर्ति शुंगकाल की है, जो मथुरा से मिली है जिसमें वे हल, मूसल लिए हैं। वे एक कुण्डल धारी हैं, उनके सिर के ऊपर सर्प के फण का नक्षत्र है। संभवतः यह बलराम का वीर रूप हो सकता है।

बलराम के विभव का रूप का वर्णन प्रतिमा-शास्त्र के अनेक ग्रन्थों में मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार, बलराम हल एवं मूसल के साथ हों तथा उनके नेत्र-मदोन्तम हों। अग्निपुराण में उनके चतुर्भुजी मूर्ति का वर्णन मिलता है। इस रूप में उन्हें हल, मूसल, गदा एवं पद्म धारण करना चाहिए। वृहत्संहिता में हल धारण किये हुए और मदोन्मत्त नेत्रों से युक्त वर्णित है। बलराम की स्वतन्त्र मूर्तियां बहुत कम उपलब्ध हैं प्रथम सदी ई० पू० की एक बलराम की प्रतिमा का उल्लेख कल्पना देसाई ने किया है, जो बनारस के मदिकेश्वर घाट से प्राप्त हुई है और भारत कला भवन, काशी में सुरक्षित है। मथुरा संग्रहालय में बलराम अवतार की कई प्रतिमाएं सुरक्षित हैं। जिसमें से एक में बलराम को खड़े हुए दिखाया गया है, उनके पीछे सर्प छत्र है, उनके बायें हाथ में मूसल है और दाहिना हाथ ऊपर सर्प छत्र के पास तक उठा हुआ है।

खजुराहों से प्राप्त एक दूसरी मूर्ति में बलराम ललितासन में बैठे हैं, और वे करण्ड-मुकुट, हार, ग्रैवेयक, कुण्डल, याज्ञोपवीत, कटिसूत्र, कंकण आदि सामान्य आभूषणों से अलंकृत हैं। खजुराहो से ही

प्राप्त एक अन्य मूर्ति में बलराम द्वारा सूत लोमहर्षण के वध का दृश्य प्रदर्शित है। बलराम अपना दाहिना पैर आगे बढ़ाकर अपने दोनों हाथों से पकड़े हुए हल से सूत लोमहर्षण पर प्रहार कर रहे हैं खजुराहो की एक अन्य मूर्ति बलराम और उनकी पत्न रेवती की आलिंगन मूर्ति है। इसमें बलराम और रेवती आलिंगन मुद्रा में त्रिभंग खड़े हैं।

बुद्ध अवतार -

शाक्य वंश में उत्पन्न गौतम बुद्ध को भी, जिन्होंने बौद्ध धर्म का प्रवर्तन किया, पुराणों में अतवारों में परिगणित किया गया है, यद्यपि बौद्ध धर्मानुयायियों ने इसे कभी स्वीकार नहीं किया। पुराणों में दो कथाएं हैं- पहली के अनुसार विष्णु ने दुष्टों और असुरों को ऐसी शिक्षा देकर माया-मोह के भुलावे में डालने के लिए बुद्ध अवतार लिया कि उनका अन्त हो जाय। दूसरी के अनुसार अच्छे कर्मों तथा वैराग्य भाव का आदर्श उपस्थित करने के लिए उन्होंने बुद्ध अवतार लिया। भागवतों ने इसे मोह माया अवतार माना है।

वृहत्संहिता में बुद्ध मूर्ति का वर्णन इस प्रकार है : बुद्ध की हथेलियां एक पद-तल कमल से चिह्नित हों, वे शान्त मुद्रा में हो तथा बाल छोटे और सुसज्जित हों, वे सम्पूर्ण विश्व की पिता की भांति कमलासन पर बैठे हों। विष्णु पुराण में उन्हें दिगम्बरों मुण्डो वर्हिपिच्छ धरः कहा गया है। अर्थात् वे सिर मुड़ाये एवं नंगे हो तथा हाथ में मयूर पंख हो। अग्निपुराण बुद्ध को शान्तात्मा, लम्बे कर्णवाला, गौरांग पद्म पर स्थित श्वेत वस्त्रधारी बतलाता है। उनके दोनों हाथ वरद एवं अभय मुद्रा में रहते हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार बुद्ध को कषाय वस्त्रधारी, स्कन्ध पर वल्कल वस्त्र पड़ा हुआ, पद्मासनस्थ दो भुजा वाला होना चाहिए। उन्हें ध्यान -युक्त वरद तथा अभय मुद्रा में चित्रित करना चाहिए। रूपमण्डन बुद्ध को पद्मासन लगाकर बैठे, ध्यान मग्न, आभूषण रहित, कषाय वस्त्रधारी बतलाता है।

विष्णु के बुद्धावतार की स्वाधीन मूर्ति नहीं के बराबर है। दक्षिण भारत के दशावतार पट्टों पर कृष्ण के स्थान पर बुद्ध को दिखाने की परम्परा रही है। अधिकांश दशावतार पट्टों पर बुद्ध के दाहिने हाथ को

ओीय मुद्रा में दिखाया गया है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय में भूमि-स्पर्श मुद्रा में असीन बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा सुरक्षित है, किन्तु वह विष्णु के बुद्धावतार की प्रतिमा नहीं है।

कल्कि अवतार

कलियुग के अन्त में विष्णु कल्कि के रूप में अवतार लेने वाले हैं। वे ब्राह्मण विष्णुयश के घर संसार में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए तथा याज्ञवल्क्य मुनि की सहायता से स्लेच्छों के विनाश के लिए पैदा होंगे। हयशीर्ष पंचरात्र एवं अग्निपुराण के अनुसार कल्कि के दो या चार हाथ होने चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में कल्कि को खड्गोधतकरः क्रद्धो ह्ययारूढो महाबलः अर्थात् खड्ग हाथ में लेकर क्रोधोवेश में अश्वारूढ महानयोद्धा के रूप में वर्णन है। रूपमण्डन में कल्कि को हाथ में खड्ग लिए हुए अश्वारूढ कहा गया है। वैखानस आगम में उन्हें चार भुजा वाला बतलाया गया है। उनका मुख अश्व के समान तथा शेष शरीर मनुष्य के आकार का होता है, हाथों में शंख, चक्र, खड्ग तथा खेटक रहता है, उनका आकार भयानक होता है।

कल्कि अवतार की स्वतन्त्र मूर्तियां बहुत कम हैं। पूर्वी भारत के कुछ मध्यकालीन शिलापट्टों पर अश्व पर बैठे हुए एक देवता उत्कीर्ण है, जो अनेक अनुचरों से सेवित हैं। खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर की जगती पर रूपपट्टिका में दो अश्वारोही दक्षिण की ओर, और एक उत्तर की ओर उत्कीर्ण है। दक्षिण की ओर उत्कीर्ण दोनों अश्वारोही खड्गधारी हैं और उनके सिरों पर अश्वों के पीछे पैदल चलते हुए अनुचरों द्वारा छत्र लगाये गये हैं। उत्तर की ओर चित्रित अश्वारोही के आगे खड्ग और खेटकधारी एक पैदल है और पीछे की ओर पैदल चलता छत्रधारी अनुचर है और फिर हाथी पर सवार सैनिक है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं टिप्पणियां -

1. डी. एच. आई. पी. 387
2. भगवद्गीता 18-61
3. ई. एच. आई, आई. आई. पी. 78-80
4. बाजपेयी, के डी., टू रेयर इमेजेस ऑफ विष्णु फ्रॉम मथुरा, भाग 2
5. प्र. वि., पृ0 254
6. रामाश्रय अवस्थी, खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ0 67
7. प्र. वि., पृ0 255
8. वही
9. वही
10. वही
11. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 81/2-8
12. अपराजि पृच्छा, 219/1-9
13. महाभाष्य, 6/3/5
14. महाभारत, 12रु349/37
15. वही, 12/389/177
16. वायु पुराण, 98/71
17. भागवत पुराण, 1/3/6-22
18. वही, 1/3/16-22
19. रघुवंश, 13/5
20. वृहत्संहिता, 58/30
21. शतपथ ब्राह्मण, 1/8
22. तैत्तिरीय सं0, 6,2,4,2
23. शतपथ ब्राह्मण, 14,1,2,11

- 24.वाल्मीकी रामायण, 3/45/13
- 25.वै. आ., पृ0 186
- 26.ई. एच. ई., पी. पी.149-51
- 27.शिल्प रत्न, अ. 25/11
- 28.ई. एच. आई, आई. आई. 152-53
- 29.स्पूनर, डी. बी., एक्सकेवेशन एट बसाढ़, 1913, पृ0 133
- 30.खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ0 102
- 31.छत्री दण्डी वामनः स्यादथवा स्थाच्चतुर्भुजः। अ. पु. 49/5
- 32.वैखा. आ. पृ0 199
- 33.शिल्परत्न आ., 25/15
- 34.वि. ध. पु, 85, 55-57
- 35.आइकोनोग्राफी ऑफ विष्णु, पृ0 100
- 36.भा. पु. 9,15,14
- 37.महा. भा., 3, 116, 14
- 38.रामा., 1,71
- 39.डी. एच. ई., पृ0 420

शिव-प्रतिमाए

ਭਾਸ਼ਨੀ-ਭਾਗ

शिव प्रतिमा

गुप्तकाल तक शिव की पूजा अनेक रूपों में भारतीय हिन्दू समाज में प्रचलित थी। शिव को अनेक रूपों में पूजा गया था। गुप्तकाल में शिव-पूजा शिवलिंग के रूप में अधिक प्रचलित थी। शिवलिंग पर मूर्ति के अनुकूल रूप मिलते हैं। इन अनेक रूपों में शिवलिंग पर कहीं एक मानव की मुखाकृति, कहीं कहीं शिवलिंग पर दो मुखाकृतियाँ तो कहीं चतुर्भुजी शिवलिंग पंचमुखी और अष्टमुखी शिवलिंग भी उपलब्ध हुए हैं। इन अनेक मुखों की आकृति में शिव के अनेक रूपों की एक साथ पूजा का भाव सन्निहित है। पंचमुखी शिवलिंग के ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव व सद्योजात स्वरूप हैं। लिंग के सबसे ऊपर के भाग को भोग कहते हैं। इसका आकार वृताकार होता है। उसके बीच के भाग में आठ कोण बाँये जाते हैं तथा सबसे नीचे का भाग चौकोरन निर्मित होना चाहिए। इस कोटि के लिंगों में बहुमूल्य रत्न जुड़े होने चाहिए। लिंग के ऊपर का भाग सदैव ऊपर की ओर उठा हुआ बनाना चाहिए और जिसके ऊपर बनी हुई सुन्दर रेखाएं ऊपर जाकर तिरछी हो जाती हैं। गुप्तकाल में शिव की पूजा प्रतीकात्मक लिंग रूप में विद्यमान थी। उसका महत्व काशी, उज्जैन, मथुरा, पवाया, मंदसौर, राजगीर, मण्डेश्वरी आदि स्थानों पर रहा है। इन अनेकों स्थानों पर शिव की पूजा लिंग के रूप में तत्कालीन समाज में सम्माननीय थी। उनके अनेक लिंग निर्मित हुए। इस तरह का एक लेख युक्त शिवलिंग आज भी लखनऊ संग्रहालय में देखने को मिलता है। यह लिंग फैजाबाद जिले के करमदण्डा नामक स्थान से प्राप्त हुआ है। इसकी स्थापना कुमार गुप्त प्रथम के मंत्री पृथ्वीषेण ने की थी। लिंग बिल्कुल विष्णु धर्मोत्तर पुराण में वर्णित अनुपात में ही निर्मित है।

गुप्तकाल में शिवलिंग के सन्दर्भ में प्रमुख विशेषता एकमुखी शिवलिंग हैं। एक मुखी शिवलिंग की प्रतिमा को इस काल में अधिकाधिक मनोहारिता युक्त प्रस्तुत किया गया है। इस तरह का स्वरूप शिवलिंग में गुड्डीमल्लम् में उपलब्ध हुआ है या फिर गुप्तकाल में। बीच के समय में अनेक मुखी शिवलिंग की परम्परा का बोध होता है। या केवल शिवलिंग पर सम्पूर्ण मानवाकृति है। जो कि यक्ष की प्रतिमा के प्रमानानुरूप है किन्तु गुप्तकालीन शिवलिंग की प्रतिमा में केवल शिव की मुखाकृति है। भीटा वाले पंचमुखी शिवलिंग में भी केवल मुखाकृतियाँ हैं। कुषाण काल में मथुरा में देव प्रतिमाओं का मानवीकृत

रूप प्रस्तुत किये जाने लगा था किन्तु शिव का मानवाकार सम्पूर्ण रूप में न होकर गुप्तकाल में लिंग की एक पहल पर मुखाकृति के रूप में हुआ है। गुप्तकाल के समाप्ति के समय तक शिव मानव रूप में पार्वती व अन्य परिवार के रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे थे। इस तरह गुप्तकाल में शिवलिंग एक मुखाकृति वाले सर्वप्रथम आते हैं।

चौथी शताब्दी के पूर्वार्ध के लगभग उदयगिरी का शिवलिंग निर्मित हुआ है। इसमें लिंग के गोल पिण्ड की एक पहल पर शिव का मुख उभरे हुए रूप में है। इसे केवल मुख न कहकर मानव का ऊपरी थड़ कहा जाना अधिक उपयुक्त है। जो कि कर विहीन है। गले में फूलों का हार अलंकृत रूप में है। कान लम्बे तथा कुण्डलों के साथ है। इसकी नाक तोड़ दी है। शेष अवयव भी कालक्रम के अनुसार कुछ धस से गए हैं। कपाल के ऊपर जटाएं हैं जिनके ऊपर गंगा का आरोहण, लहरियादार लहरों में शिवलिंग की गोलाई पर बना हुआ है। यह सफेद भूरे पत्थर पर सुन्दरता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें जटाओं की आकृति ऊपर को उठती हुई सीधी उभरी हुई पंक्तियों दिखाई गयी है। जहां शिव के सिर का भाग लिंग की गोलाई से मिल जाता है वहां गंगा बहती हुई लहरों में लिंग पर से नीचे आती है। अलंकृत हार शिव के कण्ठ की अपेक्षा लिंग की गोलाई पर प्रतीत होता है। उदयगिरि से एक अन्य शिवलिंग की प्रतिमा इसी समय की और भी उपलब्ध होती है। इस शिवलिंग का स्वरूप अत्यन्त खण्डित एवं क्षतिग्रस्त है। अतएव उसका उल्लेख ही शिवलिंग की परम्परा पर्याप्त है।

लिंग की संरचना एवं स्वरूप -

प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में अनेक विवरण प्राप्त होते हैं विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार लिंग के तीन प्रमुख भाग होते हैं-

1. भोग पीठ
2. भद्र पीठ
3. ब्रह्म पीठ।

लिंग का ऊपरी वृत्ताकार हिस्सा भोग पीठ, बीच का भाग भद्रपीठ और नीचे का भाग ब्रह्म पीठ होता है।¹ शास्त्रीय ग्रन्थों के विवरण के आधार पर गोपीनाथ राव ने निष्कल, सकल तथा मिश्रित प्रकार में लिंग रूप को विभाजित किया है।² स्थिरता और सरलता के आधार पर लिंग को चल और अचल प्रकारों में विभक्त किया गया है। पुनः निर्माण पदार्थों के आधार पर छः प्रकारों में बांटा गया है-

1. मिट्टी के द्वारा बने लिंग
2. धातुओं के द्वारा बने लिंग
3. रत्नों के द्वारा बने लिंग
4. काष्ठ के द्वारा बने लिंग
5. पत्थरों के द्वारा बने लिंग
6. बालू, पुष्प, चावल, चन्दन एवं रुद्राक्ष के द्वारा बने लिंग

लिंग के अन्तर्गत शिव के एक मुख से लेकर पांचमुखों तक का चित्रण किया जाता था। और लिंग के इस रूप को मुखलिंग की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। शिव की एक मुखी तथा पांचमुखी प्रतिमा का उल्लेख जीतेन्द्रनाथ बनर्जी ने किया है।³ गुप्तकाल के अनेक शिवलिंग प्राप्त हुए हैं। जिनमें से कुछ सादे और कुछ मुखलिंग हैं सादे लिंग, एरण और करमदण्डा से तथा मुखलिंग नचना, खोह, मंदसौर आदि से मिले हैं।

शिव की मानव रूप-प्रतिमा

गुप्तकालीन साहित्य और कला में शिव की सम्पूर्ण मानवीय रूप प्रतिमाओं का अंकन भी हुआ है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण, वृहत्संहिता और अन्य कई पुराणों में उनके मानवी रूप का चित्रण देखने को मिलता है। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार महादेव को वृष पर आरूढ़ बनाना चाहिए। वासुकि नाग भुजाएं होती हैं। दाहिने की पांच भुजाओं में वे अक्षमाला, त्रिशूल, दण्ड, नीलकमल तथा एक विशाल सर्प को धारण किये हुए रहते हैं। बायीं ओर की भुजाओं की भुजाओं में मातुलुंग धनुष, दर्पण, कमण्डल तथा चर्म रहता है। शिव की प्रतिमाओं को मुख्यतः दो रूपों में विभक्त किया गया है-

1. सौम्यरूप प्रतिमा
2. घोर, उग्र या संहार रूप प्रतिमा

पौराणिक कथाओं से असम्बद्ध शिव की सौम्य प्रतिमा के अन्तर्गत निम्न प्रतिमाएं आती हैं।

चन्द्रशेखर प्रतिमा-

इस प्रतिमा के अन्तर्गत शिव के मस्तक पर चन्द्रमा की आकृति प्रदर्शित की जाती है। शिव की चन्द्रशेखर प्रतिमा को तीनों रूपों में दिखाया जाता है।

1. केवल चन्द्रशेखर- चन्द्रशेखर प्रतिमा का उल्लेख सभी आगमों में मिलता है। अशुमद्भेदागम के विवरण के अनुसार केवल चन्द्रशेखर प्रतिमा को चतुर्भुज बनाना चाहिए। इस प्रतिमा के दाहिने हाथों में से एक हाथ अभय मुद्रा में तथा दूसरे हाथ में टंक दिखानी चाहिए। बायें हाथों में से एक हाथ वरद मुद्रा में और दूसरे हाथ में कृष्ण-मृग होना चाहिए यह प्रतिमा समभंग मुद्रा में प्रदर्शित होती है, देवता के मस्तक पर जटा-जूट होना चाहिए जिसके ऊपर अर्धचन्द्र को दिखाया जाता है। उन्हें विभिन्न आभूषण तथा पीताम्बरधारी होना चाहिए।⁴ बसरा से प्राप्त एक मुद्रा पर धूमिल चित्र चित्रित है, जिसको बनर्जी ने चन्द्रशेखर प्रतिमा स्वीकार की है।
2. उमा सहित-चन्द्रशेखर - अशुमद्भेदागम के विवरण से ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा भी चन्द्रशेखर प्रतिमा के समान ही होती है। अन्तर केवल इतना है कि चन्द्रशेखर के साथ उसी पीठिका पर या अन्य पीठिका पर उमा की आकृति बनायी जाती है।
3. आलिंगन-चन्द्रशेखर- इस प्रतिमा में चन्द्रशेखर अपने बगल में बैठी उमा का आलिंगन करते हुए दिखाये जाते हैं। उमा के दायें हाथ में कमल होता है या दायें हाथ से शिव की कटि का आलिंगन करती है और उनके बायें हाथ में पुष्प रहता है। आलिंगन चन्द्रशेखर की एक सुन्दर प्रतिमा तंजौर के बृहदेश्वर मन्दिर से प्राप्त हुई है।⁵

सुखासन-प्रतिमा

इसका विवरण विष्णुधर्मोत्तर पुराण और रूपमण्डन में प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार इस प्रतिमा के अन्तर्गत उमा और शिव को एक ही पीठिका पर आलिंगन करते हुए प्रदर्शित किया जाना चाहिए। जट-जूटधारी शिव के दाहिने हाथ में नीलोत्पल तथा बाया हाथ उमा के कंधे पर दिखाना चाहिए। उमा का दाहिना हाथ शिव के कंधे पर और बाये हाथ में कमल पुष्प प्रदर्शित किया जाना चाहिए।

रूपमण्डन के अनुसार उमा-माहेश्वर प्रतिमा के अन्तर्गत शिव को चतुर्भुजी दिखाना चाहिए। उनका एक हाथ उमा के कंधे पर तथा दूसरे हाथ में सर्प प्रदर्शित करना चाहिए। रूपमण्डन के अनुसार ही उमा-माहेश्वर प्रतिमा के साथ वृषभ, स्कन्द, नन्दी तथा नृत्य करते हुए भृंगी ऋषि को भी प्रदर्शित करना चाहिए। एक अष्टधातु की बनी हुई उमा-माहेश्वर प्रतिमा रामपुर से प्राप्त अवशेषों से प्राप्त हुई है। इसमें दाहिने हाथ में उत्पल है और बाया पार्वती के ऊपर रखा है। पार्वती उनकी बायीं जांघ पर बैठी है। बिहार शरीफ से उमा-माहेश्वर की एक अतीव सुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई है। इसमें चतुर्भुज शिव ललितासन पर बैठे हैं और पार्वती उनकी बायीं और गोद में बैठी है। एक हाथ से शिव पार्वती की ठूँढ़ी का स्पर्श कर रहे हैं और दूसरा हाथ पीठ की ओर से आलिंगन बद्ध है। एक हाथ पार्वती का बाया स्तन छू रहा है। उमा प्रेम विभोर हैं, उनकी सलज्ज आंखें नीचे की ओर झुकी हुई हैं। एक हाथ से शिव सलज्जा नतमस्तक पार्वती के चिबुक को पकड़ कर प्रेम पूर्वक उठा रहे हैं। उमा के पैरों के नीचे सिंह खड़ा है।

शिव की दक्षिण-प्रतिमा

शिव नृत्य, संगीत, योग आदि के आचार्य भी माने जाते हैं उनके प्रतिमाओं का निर्माण इन विषयों के प्रणेता के रूप में किया गया है। शिव ने यह ज्ञान दक्षिण दिशा की ओर मुख करके दिया था, इसलिए इसे दक्षिण-प्रतिमा की संज्ञा प्रदान की गई है। यह प्रतिमा चार प्रकार से निर्मित की जाती है-

1. व्याख्यान दक्षिण प्रतिमा- शिव के व्याख्यान-दक्षिणा-प्रतिमा के अनेक विवरण प्राप्त होते हैं। इसमें शिव का चित्रण पीठिका पर मृग-चर्म पर आसीन किया जाता है। उनका एक पैर मोड़ कर ऊपर तथा दूसरा नीचे लटकता हुआ होना चाहिए। इस प्रतिमा में शिव के तीन नेत्र और चार भुजाएं होनी चाहिए। शिव के मस्तक पर जटा भार प्रदर्शित किया जाना चाहिए। जटा में एक तरफ धतूरे का फूल और सर्प तथा दूसरी ओर कपाल और अर्धचन्द्र प्रदर्शित किया जाना चाहिए। मध्य में गंगा का चित्रण होना चाहिए। इस प्रतिमा को ऋषियों से घिरा हुआ निर्मित किया जाना चाहिए। विष्णु कांची और तेरोवरियूर में व्याख्यान-दक्षिणा-प्रतिमा का चित्रण दृष्टव्य है।
2. ज्ञान-दक्षिणा-प्रतिमा- शिव की ज्ञान-दक्षिणा-प्रतिमा, व्याख्यान-दक्षिणा-प्रतिमा से बहुत भिन्न नहीं है। इसमें उनके एक हाथ में उत्पल तथा दूसरा आीय मुद्रा में प्रदर्शित किया जाता है। उनके आगे के एक हाथ में अक्षयमाला होती है। अहिछत्र से प्राप्त गुप्तकाल के अन्तिम समय के एक भग्न शिवमन्दिर से प्राप्त एक टुकड़े पर इस अवतार की प्रतिमा का चित्रण किया गया है।
3. योग-दक्षिणा-प्रतिमा- प्रतिमाशास्त्रीय ग्रन्थों में, इस प्रतिमा में शिव को कई प्रकार से आसीन दिखाने का विवरण उपलब्ध होता है। एक के अनुसार उन्हें पालथी मार कर बैठे हुए, दूसरे के अनुसार उनका बांया पैर मुड़ा होना चाहिए। इस प्रतिमा में देवता के दाहिने हाथ में अक्षमाला दिखाने का विधान है। इसमें उनका बांया हाथ योग मुद्रा में गोद में रखा हुआ दिखाना चाहिए। एक अन्य विवरण के अनुसार घुटने पर सीधा प्रसारित होना चाहिए। राव महोदय ने विष्णु कांची से प्राप्त शिव की ऐसी प्रतिमा का उल्लेख किया है।
4. वीणाधर-दक्षिण-प्रतिमा - इस प्रतिमा का विवरण अनेक शैवागमों में प्राप्त होता है। इसमें शिव के सामने के दोनों हाथों में वीणा और पिछला व्याख्यान-दक्षिणा-प्रतिमा की तरह होता है। मद्रास संग्रहालय में शिव की वीणाधर-दक्षिण-प्रतिमा का सुन्दर चित्रण संग्रहीत है।

हरिहर-प्रतिमा

हरिहर प्रतिमा के सम्बन्ध में शास्त्रीय विधान के अनुसार बायां भाग विष्णु का और दाहिना भाग शिव का दिखाना चाहिए। विष्णु भाग में मणिजटित कीरिट का प्रदर्शन होना चाहिए तथा होथों में विष्णु के आयुध होने चाहिए। शिव भाग में जटाभार, याज्ञोपवीत तथा मृग चर्म प्रदर्शित किया गया है इसके दाहिने भाग में शिव तथा बांये भाग में ऋषिकेश को प्रदर्शित किया जाना चाहिए। शिव भाग के हाथ में त्रिशूल तथा डमरू और विष्णु भाग के हाथ में चक्र तथा कमल स्थित होता है। प्रतिमा के दांये भाग में वृषभ तथा बांये भाग में गरुड़ दिखाया जाना चाहिए। शिल्परत्न के अनुसार इन देवताओं के साथ उनकी पत्नियों को भी प्रदर्शित किया जाना चाहिए।⁷

गुप्तकाल की कुचरी से प्राप्त एक हरिहर-प्रतिमा प्रयाग संग्रहालय में सुरक्षित है। मथुरा से प्राप्त एक स्तम्भ पर अन्य देवताओं के साथ हरिहर की भी प्रतिमा है। इस प्रतिमा का बायां भाग विष्णु का है, जिसमें देवता कीरिट, कुण्डल और धोती पहले हुए हैं। बांयी ओर के ऊपर वाले हाथ में शंख है और नीचे वाला हाथ चक्र पुरुष के मस्तक पर रखा है।⁸ प्रतिमा का दाहिना भाग शिव का है। इस भाग में देवता को जटाभार, याज्ञोपवीत और मृग चर्म धारण किये हुए दिखाया गया है। शिव भाग के ऊपर वाले हाथ की वस्तु खण्डित हो चुकी है, परन्तु नीचे वाला हाथ त्रिशूल पुरुष के ऊपर वाले हाथ की वस्तु खण्डित हो चुकी है, परन्तु नीचे वाला हाथ त्रिशूल पुरुष ऊपर रखा है। मथुरा संग्रहालय में इस काल की अनेक खण्डित हरिहर प्रतिमाएं हैं। बादामी से प्राप्त हरिहर प्रतिमा में अन्य विशेषताओं के साथ-साथ बामार्द्ध में मकर कुण्डल और दक्षिणार्ध में सर्पकुण्डल प्रदर्शित किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रतिमा के दाहिनी और पार्वती और नन्दी को दिखाया गया है तथा बांयी ओर लक्ष्मी और गरुड़ को प्रदर्शित किया गया है।⁹

कल्याण सुन्दर-प्रतिमा

इस प्रतिमा में शिव और पार्वती के विवाह का दृश्य किया गया है। शास्त्रीय विधान के अनुसार इस प्रतिमा में शिव और पार्वती के बीच में स्वर्ण कलश लिए हुए विष्णु को प्रदर्शित करना चाहिए, सामने

हवन करते हुए ब्रह्मा का चित्र हो और चारों ओर किन्नर, गन्धर्व, मातृका, ऋषि आदि प्रदर्शित हों। शिव अपना दाहिना हाथ आगे बढ़ा कर पार्वती का पाणिग्रहण कर रहे हों। शिव का बाया हाथ वरद मुद्रा में तथा अन्य हाथों परशु और मृग होना चाहिए। शिव के अलंकारों में विभिन्न आभूषण व जटामुकुट दिखाया जाता है।¹⁰ त्रिभंग मुद्रा में खड़े शिव की बायी ओर, बाये हाथ में नीलोत्पल लिए हुए, झुकी हुई मस्तक वाली, सलज्ज पार्वती को प्रदर्शित किया जाता है।¹¹

कल्याण सुन्दर-प्रतिमा का सुन्दर चित्रण कई स्थानों पर किया गया है। डॉ० वी पीव सिंह ने बिहार से प्राप्त एक कल्याण सुन्दर प्रतिमा का उल्लेख किया है, जो पटना संग्रहालय में सुरक्षित है। इसमें शिव और पार्वती के विवाह का दृश्य उपस्थित किया गया है। शिव के बायी ओर पार्वती खड़ी है। पार्वती के एक हाथ में दर्पण है और दूसरा हाथ शिव के हाथ में है। शिव चतुर्भुजी हैं, उनके चारों हाथों में से तीन में त्रिशूल, डमरू और कपाल है तथा एक दाहिना हाथ पार्वती का दाहिना हाथ पकड़े हुए हैं। शिव और पार्वती दोनों की आंखे नीचे झुकी हुई हैं। पार्वती के वक्षस्थल पर कंचुकी, कमर में करधनी, गले में हार तथा कनों में कर्ण-फूल है। नीचे शिव-पार्वती के बीच में चतुर्मुख ब्रह्मा को पुरोहित के रूप में बैठे दिखाया गया है। ढाका संग्रहालय¹² में एक कल्याण सुन्दर प्रतिमा संग्रहीत है, जिसमें जटा-जूटधारी शिव अपने दाहिने हाथ में त्रिशूल लिए हुए हैं। समीप ही वधू के रूप में पार्वती को प्रदर्शित किया गया है। शिव की एक अति सुन्दर कल्याण सुन्दर-प्रतिमा, जो कांस्य निर्मित है, तंजौर से प्राप्त हुई है। इसमें विकसित कमल-पुष्प पर शिव तथा पार्वती को खड़ा प्रदर्शित किया गया है। शिव के सिर जटा, मुकुट तथा कानों में कुण्डल है। वे सर्प का यज्ञोपवीत धारण किये हैं। उनकी चार भुजाओं में से पीछे की ओर भुजाओं में त्रिशूल तथा मृग है। आगे का बाया हाथ वरद मुद्रा में है और दाहिना हाथ नीचे प्रसारित है। पार्श्व में खड़ी पार्वती शिव के हाथ को पकड़ी है। एलौरा की गुफा में भी शिव के कल्याण सुन्दर-प्रतिमा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इस प्रतिमा में ब्रह्मा पुरोहित के रूप में यज्ञ-कुण्ड के समीप बैठे हैं इन्द्र ब्रह्मा के पीछे हैं और पार्वती के ठीक पीछे लक्ष्मी को भी दिखाया गया है। वरुण, अग्नि, यम, वायु, विद्याधर आदि को अपने वाहनों के साथ प्रदर्शित किया गया है। भेड़ा घाट के गौरी शंकर मन्दिर के गर्भगृह में स्थित कल्याण सुन्दर-प्रतिमा का उल्लेख आर. डी. बनर्जी ने किया है। इस प्रतिमा में शिव और पार्वती दोनों त्रिभुज हैं। शिव के बाये हाथ में त्रिशूल है

ओर दाहिना हाथ वक्षस्थल पर रखा हुआ है। पार्वती अपने बायें हाथ में गोल दर्पण ली है एवं उनका दाहिना हाथ नाभि पर रखा है। शिव नन्दी पर सवार है। नव विवाहित दम्पति के मुख पर सहज अनुराग ओर संकोच के भावों का सफल अंकन किया गया है।¹³

शिव की नृत्य प्रतिमाएं

शैवागमों के अनुसार शिव ने एक सौ साठ मुद्राओं में नृत्य किया था। इनकी नृत्य की विभिन्न मुद्राओं की प्रतिमाएं चिदम्बरम के गोपुरम् में बनी हैं। भरत नाट्यशास्त्र में इन मुद्राओं के अलग-अलग नाम दिये गये हैं। अंशुमद्भेदागम्¹⁵ के अनुसार नृत्य मुद्रा के अन्तर्गत शिव अपसमार पुरुष पर दाहिना पैर रखे हुए प्रदर्शित किये जाते हैं, उनका बाया पैर उठा हुआ तणी तिरछा रहता है। शिव की चार भुजाएं दिखायी जाती हैं। सामने का बाया हाथ गजहस्त मुद्रा में इस प्रकार दिखाया जाता है कि उनकी अंगुलियां पैर की ओर संकेत करती हों सामने वाले दाहिने हाथ में सर्वपलय धारण किये हुए तथा पीछे वाले हाथ में डमरू धारण किये रहते हैं। उनकी जटा-जूट से पांच, सात या ग्यारह लटें बाहर की ओर निकली हुई दिखायी जाती है। शिव मृग-चर्म धारण किये रहते हैं। उनकी बांयी ओर उमा की भी आकृति बनाई जा सकती है। शिव की नृत्य प्रतिमाएं भारत के विभिन्न भगों में बनाई जाती थी, किन्तु इनकी सर्वाधिक संख्या दक्षिण भारत से ही प्राप्त होती है। ऐलोरा गंगैकोण्डचोलपुरम और बादामी आदि की नृत्य प्रतिमाओं की गणना श्रेष्ठतम प्रतिमाओं में की जाती है।¹⁶

वृषभ वाहन प्रतिमा

इस प्रतिमा में शिव अपने वाहन वृषभ पर बैठे दिखाये जाते हैं। साथ में पार्वती को भी बैठा प्रदर्शित किया जाता है। शिव की एक वृषभ-वाहन अयहोल से प्राप्त हुई है, जिसमें शिव सुखासन-मुद्रा में वृषभ पर आरूढ है। जीतेन्द्र नाथ बनर्जी ने पियर्स संग्रह के अन्तर्गत प्राप्त वृषभ-वाहन-प्रतिमा का उल्लेख किया है। इस प्रतिमा में भी शिव सुखासन-मुद्रा में वृषी पर बैठे हैं इस प्रतिमा में शिव के तीन सिर तथा चार भुजाएं हैं, इसी प्रकार मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित वृषभ पर बैठे हुए शिव और पार्वती की एक पाषाण निर्मित प्रतिमा का उल्लेख भी बनर्जी महोदय ने किया है।

अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा

यह प्रतिमा शैव के सोम सिद्धान्त और कापालिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। इन सम्प्रदायों में शिव और पार्वती, दोनों को बड़ा महत्व दिया गया है। अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा इस सम्प्रदाय के दर्शन के आधार पर निर्मित की जाती है। सोम सिद्धान्त के अनुसार यह समस्त जगत् शिव और पार्वती के लीला की प्रतिष्ठा है। कापालिक सम्प्रदाय प्रत्येक स्त्री पुरुष में शिव-पार्वती का रूप देखता है। इसी कल्पना का आगे चलकर अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्धान्त प्रत्यभिज्ञा का विकास हुआ। प्रत्यभिज्ञा दर्शन के अनुसार दोनों ही परम सत्य के दो रूप हैं परम शिव ही एक मात्र मूलतत्त्व है। समस्त जीव एवं जगत् उसी का आभास है। जीतेन्द्र नाथ बनर्जी ने शिव के अर्द्धनारीश्वर निर्माण के आधारभूत तत्वों की विवेचना करते हुए स्पष्ट किया है कि यह प्रतिमा शैव और शाक्त सम्प्रदायों की आधारभूत एकता को घोषित किया है। संभवतः दोनों ही सम्प्रदायों में संघर्ष की स्थिति थी और इस स्थिति में दोनों ही अपने सम्प्रदायों की श्रेष्ठता घोषित करते थे। कालान्तर में चलकर इस संघर्ष की स्थिति को दूर करने के लिए अर्द्धनारीश्वर की कल्पना की गई। इस प्रतिमा में अर्द्ध भाग पुरुष और अर्द्ध भाग नारी का प्रदर्शित किया जाता है।¹⁷

शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप के प्रतिमा निर्माण के सम्बन्ध में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में बतलाया गया है कि देवता का आधाभाग नारी का और आधा भाग पुरुष का होना चाहिए। आधे भाग में शिव से सम्बन्धित अलंकरण तथा आयुध और आधे भाग में स्त्रियोचित आभरण प्रदर्शित किया जाना चाहिए। मत्स्य पुराण में भी बतलाया गया है कि अर्द्धनारीश्वर रूप में देवता का आधा शरीर जटा-जूट, सर्प-यज्ञोपवीत, त्रिशूल आदि से और आधार भाग सुन्दर वस्त्र, केयूर, मेखला, कंकण आदि से सुशोभित रहता है। लक्षण ग्रन्थों के आधार पर निर्मित शिव की अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाएं भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त होती हैं। मथुरा संग्रहालय¹⁸ में दो गुप्तकालीन सुन्दर अर्द्धनारीश्वर प्रतिमाएं हैं। इन प्रतिमाओं में शिव वाले अंग का हाथ अभय मुद्रा में है और पार्वती वाले अंग के हाथ में दर्पण है। पुरुष भाग में जटा-जूट और नारी भाग में स्तन का प्रमुख रूप से अंकन हुआ है। दोनों के कर्ण-भूषणों में कोई अन्तर नहीं है। किन्तु कटि की मेखला में स्पष्ट दो रूपता है। इसी प्रकार की खजुराहो से प्राप्त

अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा में देवता को ललितासन मुद्रा में दिखाया गया है। प्रतिमा का दायां भाग जटा-जूट, अर्द्धचन्द्र, कुण्डल, त्रिशूल आदि से सुशोभित है और आधार बायां भाग सुन्दर केशविन्यास तथा स्त्रियोचित वेशभूषा से सुसज्जित है। तंजौर के वृहदेश्वर मंदिर से प्राप्त अर्द्धनारीश्वर-प्रतिमा का उल्लेख बनर्जी महोदय ने किया है। इसी प्रकार मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित एक कांस्य निर्मित अर्द्धनारीश्वर प्रतिमा का उल्लेख श्री गोपीनाथ राव ने किया है।¹⁹

अनुग्रह प्रतिमाएँ- पौराणिक कथाओं से सम्बद्ध शिव की सौम्य रूप प्रतिमा के अन्तर्गत, उनकी कथा के आधार पर रूप में शिव के अनुग्रह भाव को प्रदर्शित किया गया है। इन प्रतिमाओं के निर्माण के आधार रूप में जो कथा है उसमें शिव ने किसी न किसी के ऊपर अपना अनुग्रह भाव दिखलाया गया है। पौराणिक कथाओं के आधार पर निर्मित की जाने वाली शिव की सौम्य रूप प्रतिमाओं के अन्तर्गत निम्न प्रतिमाओं की गणना की जाती है-

चण्डेशानुग्रह प्रतिमा

इस प्रतिमा से सम्बन्धित जो कथा है वह इस प्रकार है- चोल देश में एक ब्राह्मण के पुत्र का नाम विचारशर्मन था, जो नित्य गायों को चराने ले जाया करता था। गायों को चराते समय वह बालक बालू का शिवलिंग बनाकर, गायों से दूध दुहकर उस पर चढ़ा देता था, फलतः घर पर गायें कम दूध देने लगती थीं। इसकी सूचना जब उसके पिता को मिली तब उसके पिता ने एक दिन बालक द्वारा बनोय गये बालू के शिवलिंग को पैर से मारकर गिरा दिया, जिस पर क्रोधित होकर विचारशर्मन ने अपनी कुल्हाड़ी से अपने पिता का पैर काट दिया। अपने भक्त की अपने प्रति असीम श्रद्धा को देखकर भगवान शिव वहां पर उपस्थित होकर विचारशर्मन को अपने गणों का प्रमुख बना दिया और उसे अमरत्व का वरदान दिया। इस कथा के आधार पर जो प्रतिमा निर्मित की जाती है, उसे चण्डेशानुग्रह प्रतिमा कहा जाता है। इस प्रतिमा में पीठिका पर उमा सहित शिव की आकृति प्रदर्शित की जाती है और पद्मासन में ध्यानमग्न बालक विचारशर्मन की आकृति बनायी जाती है।²⁰ गंगैकोण्डचोलपुरम में शिव द्वारा विचारशर्मन पर अनुकम्पा करने की कथा का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इसमें शिव को सुखासन-मुद्रा में तथा भक्त को घुटने के बल बैठे हुए अंजलि मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।

पार्श्व में स्थित पार्वती उत्कृष्टिकासन मुद्रा में अंकित है, जिनका हाथ अभय मुद्रा में है। प्रतिमा अतीव कलात्मक एवं प्रभावशाली है। इसी प्रकार तिरुवालीश्वरम् के वालेश्वर मन्दिर में विद्यमान शिव की दो चण्डेशानुग्रह प्रतिमाओं में से एक में चतुर्भुजी शिव के ऊपरी दोनों हाथों में परशु और मृग दिखाया गया है। निचले दाहिने हाथ से वे अपने भक्त को वरदान देते हुए अंकित हैं।¹¹ भक्त को अतिभंग मुद्रा में करण्ड-मुकुट धारण किये हुए दक्षिणा-प्रतिमा के समान हैं। उनके समीप घुटने मोड़कर बैठे हुए चण्डेश के हाथ अंजलिबद्ध मुद्रा में है। शिव के पार्श्व में करण्ड मुकुट और आभूषणों से सुसज्जित पार्वती को दिखाया गया है। उनके हाथों में पुष्प है तथा उनका एक पैर नीचे बैठे वृषी पर स्थित है।¹²

विष्णवानुग्रह प्रतिमा

इस प्रतिमा निर्माण की पृष्ठभूमि में जो कथा है, उसके अनुसार एक दैत्य को मारने में अपने को असमर्थ पाकर विष्णु भगवान शिव की पूजा करते हैं। वे नित्य शिवलिंग पर एक हजार कमल पुष्पों का अर्पण करते थे। एक दिन पूजा करते समय एक कमल पुष्प की कमी हो गई फलतः उस समय विष्णु ने कमल पुष्प के स्थान पर अपनी एक आंख को निकालकर शिवलिंग पर अर्पित कर दिया। विष्णु की इस पूजा और त्याग से प्रसन्न होकर शिव ने विष्णु को अपना दर्शन दिया और उन्हें एक चक्र प्रदान किया, जिससे विष्णु ने उस दैत्य का वध किया। इस कथा के आधार पर ही विष्णवानुग्रह प्रतिमा का निर्माण किया जाता है। इस प्रतिमा में चतुर्भुजी विष्णु को अंजलि मुद्रा में तथा एक हाथ में कमल पुष्प और कए हाथ में आंख लिए हुए, शिव का अर्चन करते हुए प्रदर्शित किया जाता है।¹³ शिव को चतुर्भुजी रूप में, हाथ में चक्र लिए हुए दिखाया गया है। इस प्रतिमा का सुन्दर निदर्शन कांजीवरम् और मदुरा में किया गया है।

किरातार्जुन प्रतिमा

इस प्रतिमा निर्माण के आधार के रूप में जो कथा है वह इस प्रकार है- अर्जुन शिव से पाशुपत अस्त प्राप्त करना चाहते थे। अतः उन्होंने हिमालय की उपत्यका में जाकर शिव की घोर तपस्या की। ठीक इसी समय शिव किरात के रूप में प्रकट हुए और सामने जाते हुए जंगली वाराह पर अर्जुन और

किरात दोनों ने ही एक साथ शर-संधान किया। तदन्तर मृत वाराह पर अधिकार स्थापन हेतु अर्जुन और किरात वेशधारी शिव में भीषण संग्राम हुआ। भीषण युद्ध के बाद महाबलशाली अर्जुन किरात वेशधारी शिव में भीषण संग्राम हुआ। भीषण युद्ध के बाद महाबलशाली अर्जुन घायल हो गये। तब उन्होंने अद्भुत शक्तिशाली शिव को पहचान लिया और उनके चरणों पर गिर गये। शिव ने प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशुपत अस्त्र प्रदान कर दिया। इस कथा के आधार पर निर्मित की जाने वाली प्रतिमा में अंजलिबद्ध मुद्रा में अर्जुन तथा किरात वेश में पाशुपत अस्त्र देते हुए शिव की आकृति निर्मित की जाती है। पाषाण निर्मित अत्यन्त सुन्दर की तंजौर के राधानरसिंहपुरम् की कांस्य निर्मित शिव की किरातार्जुन-प्रतिमा में पद्म पर स्थित शिव को त्रिभंग मुद्रा में अतीव कलात्मक ढंग से प्रदर्शित किया गया है।

लिंगोद्भव प्रतिमा

यह दक्षिण भारत की अत्यन्त लोकप्रिय प्रतिमा है। इस प्रतिमा से सम्बन्धित कथा का उल्लेख अनेक पुराणों में किया गया है, जो इस प्रकार है : एक बार विष्णु क्षीर सागर में शयन कर रहे थे, उसी समय उन्हें एक प्रकाश पुंज दिखाई पड़ा, जिससे ब्रह्मा उद्भूत हुए। ब्रह्मा ने विष्णु के पास जाकर पूछा- तुम कौन हो? विष्णु ने उत्तर दिया कि मैं इस सृष्टि का निर्माता हूँ। इस पर ब्रह्मा क्रोधित होकर बोले कि इस सृष्टि का वास्तविक निर्माता तो मैं हूँ। दोनों में यह विवाद अभी चल ही रहा था, कि उसी समय उन दोनों के सामने एक विशाल प्रकाशमान लिंग उद्भूत हुआ, जिससे हजारों ज्वालाएं निकल रही थीं। विष्णु ने वराह रूप धारण कर उस लिंग का निचला सिरा तथा ब्रह्मा ने हंस रूप धारण कर उसका ऊपरी सिरा ढूँढने के लिए चल पड़े किन्तु दोनों ही असफल रहे। अन्त में हारकर दोनों ने ही उस लिंग की उपासना करनी प्रारम्भ कर दी। उसी समय धनुष लिए हुए गज-चर्मधारी शिव प्रकट हुए और का कि वास्तव में हम तीनों एक ही है, किन्तु आवश्यकता हमारे तीन रूप हैं। शिव पुराण में भी तीनों ही शक्तियों की एकरूपता का उल्लेख किया गया है। शिव की लिंगोद्भव प्रतिमा के अन्तर्गत शिव की आकृति घुटने के नीचे नहीं बनायी जाती है और दाहिनी ओर ब्रह्मा के प्रतीक के रूप में हंस और विष्णु के प्रतीक के रूप में वराह को प्रदर्शित किया जाता है।

गंगाधर प्रतिमा

इस प्रतिमा निर्माण के आधार स्वरूप को कथा है, वह इस प्रकार है : एक बार 'राजासगर' के दस हजार पुत्रों को महर्षि कपिल ने अपने श्राप से भस्मीभूत कर दिया था, पुनश्च प्रायश्चित के रूप में उन्होंने यह वरदान दिया कि वे गंगा के जल-स्पर्श से पुनः जीवित हो सकते हैं कालान्तर में राजा सगर के वंशज भगीरथ ने ब्रह्मा की उपासना कर गंगा को पृथ्वी पर लाने का वरदान प्राप्त कर लिया किन्तु गंगा के वेग को रोकने के लिए उन्हें शिव की घोर तपस्या करनी पड़ी। तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने अपनी जआ में गंगा को बांधने का वरदान दिया। इस कथा के आधार जो प्रतिमा निर्मित की जाती है, उसे गंगाधर प्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमा में शिव अपना दाहिना पैर सीधा व बायां कुछ मोड़कर रखे हुए प्रदर्शित होते हैं।²⁴ उनका अगला दाहिना हाथ पार्श्व में खड़ी उमा पर रहता है। अगले बांये हाथ से वे पार्वती का आलिंगन करते हैं तथा पिछले बांये हाथ में मृग रहता है। ऊपर वाले दाहिने हाथ से वे जटा पकड़े हुए दिखाये जाते हैं, जिस पर गंगा की आकृति होती है। बांयी ओर खड़ी पार्वती के बांये हाथ में पुष्प और दाहिना हाथ नीचे प्रसारित अथवा वस्त्र की चुन्नट पकड़े हुए प्रदर्शित होता है। बिहार के चांदा मउ नामक स्थान से पांचवी सदी ई० की एक गंगाधर-प्रतिमा प्राप्त हुई है। जो इण्डियन म्यूजियम कलकत्ता में संगृहीत है। गंगैकोण्डचोलपुरम के मन्दिर में भी शिव की गंगाधर प्रतिमा का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार बारहवीं शती ई० के चिदम्बरम् के नटराज मन्दिर से प्राप्त गंगाधर-प्रतिमा में शिव को खड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। उनका दाहिना पैर सीधा और बांया घुटने से मुड़ा हुआ है। उनके बांये पार्श्व में नारी रूप में द्विभुजी गंगा की आकृति प्रदर्शित है। शिव अपना दाहिना हाथ आगे कर गंगा के मुख के समीप रखे हैं और बांया हाथ गंगा के जंघे पर स्थित है। प्रतिमा बड़ी ही सजीव और कलात्मक है, कांजीवरम् के कैलाशनाथ मन्दिर से प्राप्त प्रतिमाएं भी द्रष्टव्य हैं।

रावणानुग्रह प्रतिमा

इस प्रतिमा से सम्बन्धित जो कथा है, वह इस प्रकार है- कुबेर पर विजय प्राप्त कर विजयोन्मादित रावण लंका लौट रहा था। जब मार्ग में उसका विमान रथसरवण नामक स्थान पर पहुंचा तो उसने

सर्वोन्नत शिखर पर एक मनोरम उद्यान देखा। वह वहां पर विहार करने के लिए ललचा उठा, परन्तु ज्योंही निकट पहुंचा तो उसका विमान अवरूद्ध हो गया- वह वहीं रुक गया। यहां पर रावण को मर्कटानन वामन नन्दिकेश्वर मिले²⁵ विमानावरोध का कारण पूछने पर नन्दिकेश्वर ने बतलाया कि इस समय महादेव और उमा पर्वत पर विहार कर रहे हैं और किसी को भी वहां से निकलने की अनुमति नहीं है। यह सुनकर रावण स्वयं हंसा और महादेव की भी हंसी उड़ायी। इस पर नन्दिकेश्वर ने उसे यह श्राप दिया कि उसका मेरी ही आकृति में शक्ति वाले मर्कटों से नाश होगा। रावण क्रोधित होकर सम्पूर्ण पर्वत को ही उठाकर फेंकने का प्रयास करने लगा, जिसके फलस्वरूप पर्वत हिलने लगा और पार्वती लड़खड़ाकर एवं भयभीत होकर शिव के आलिंगन पाश में आ गयी। शिव ने क्रोधित होकर अपना एक पैर भूमि पर टिका कर पूरे पर्वत को दबा दिया जिसके परिणामस्वरूप पर्वत स्थिर हो गया और रावण उसके नीचे दब गया। पर्वत के नीचे बदा हुआ रावण रो-रोक कर एक हजार वर्ष तक शिव की आराधना की। शिव ने अन्त में रावण पर अनुग्रह कर अपना पैर हटा लिया और उसे लंका जाने की अनुमति प्रदान की। इस कथा के आधार पर जो प्रतिमा निर्मित की जाती है, उसमें पर्वत के नीचे दशानन की आकृति बनाई जाती है। एलौरा के कैलाश नाथ मन्दिर में रावणानुग्रह प्रतिमा का सुन्दर प्रदर्शन किया गया है। प्रतिमा में पर्वत को उठाते हुए रावण पर शिव को अनुकम्पा दिखाये जाते हुए प्रदर्शित किया गया है। पर्वत के ऊपर शिव पार्वती बैठे हैं और नीचे रावण को प्रदर्शित किया गया है।²⁶

शिव की घोर रूप-प्रतिमा

शिव के घोर या संहार रूप से संबंधित जितनी भी प्रतिमाएं हैं, वे किसी न किसी पौराणिक कथा से ही संबंधित हैं। मात्र भैरव-प्रतिमा ही एक ऐसी प्रतिमा है जिसका सम्बन्ध किसी कथा से नहीं है।

भैरव-प्रतिमा

भैरव, शिव के एक विशिष्ट वर्ग का नाम है। शैवागमों में 64 प्रकार के भैरवों का उल्लेख किया गया है। जिसका विभाजन आठ वर्गों में हुआ है। इनमें से प्रत्येक के साथ एक एक योगिनी सम्बद्ध होती

है। शिव के भैरव रूप की प्रतिमाएं सामान्यतः उत्तर भारत से ही प्राप्त होती हैं। जो नग्न, भयानक मुद्रा में हाथ में तलवार, शूल अथवा कपाल लिए हुए प्रदर्शित होती हैं इन प्रतिमाओं को बटुक भैरव की संज्ञा दी गई है। दक्षिण भारतीय भैरव प्रतिमाओं में उनके साथ कुत्ता भी प्रदर्शित किया गया है।

भैरव-प्रतिमा के प्रमाशास्त्रीय लक्षणों का उल्लेख रूपमण्डन²⁷ तथा विष्णुधर्मोत्तर पुराण²⁸ में किया गया है। रूपमण्डन के अनुसार शिव की भैरव-प्रतिमा में आठ हाथ होना चाहिए। उनके हाथों में तलवार, पाश, शूल, कपाल, डमरू और सर्प प्रदर्शित होना चाहिए तथा एक हाथ अभय मुद्रा में होना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार इस प्रतिमा को पेट निकला होना चाहिए। आंखें गोल व पीली हों, देवता के दांत बाहर निकले हों व उसे कपालमालाधारी तथा सर्पाभूषणों से सुसज्जित होना चाहिए। उनके शरीर का रंग जल में भरे हुए मेघ के सदृश होता है और वे गज-चर्म को धारण किये रहते हैं उनकी समस्त भुजाएं आयुधों से विभूषित होती हैं। नख तीक्ष्ण होते हैं और वे सर्प से, पार्श्व में स्थित पार्वती को भयभीत करते हुए प्रदर्शित किये जाते हैं।

प्रतिमाशास्त्रीय लक्षणों के आधार पर निर्मित भैरव की प्रतिमाएं भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त होती हैं। जीतेन्द्रनाथ बनर्जी ने खिचिंग व बंगाल से प्राप्त शिव की दो भैरव प्रतिमाओं का उल्लेख किया है। खिचिंग से प्राप्त प्रतिमा के हाथों में सर्प है तथा निकले हुए दांत और कपालधारी होने के कारण प्रतिमा का रूप बहुत ही भयानक है।²⁹ बंगाल से प्राप्त एक भैरव की प्रतिमा आशुतोष संग्रहालय में सुरक्षित है। जिसमें भैरव की बहुत सी भुजाएं प्रदर्शित की गई हैं। इसी प्रकार इण्डियन म्यूजियम में संग्रहीत शिव की एक भैरव प्रतिमा का उल्लेख राव महोदय ने किया है। ऐलौरा के दशावतार मंदिर में भैरव रूप को कपालमालाधारी तथा गज-चर्म को पकड़े हुए प्रदर्शित किया गया है। उनके चारों ओर सर्प लिपटा हुआ है, खुले हुए मुख में से उनके बड़े बड़े दांत दिखाई पड़ते हैं, उन्होंने अपने त्रिशूल से एक व्यक्ति को बांध दिया है। उन्होंने अपने बांये हाथ से एक व्यक्ति का पैर पकड़ रखा है और अपना डमरू बजाने हेतु एक हाथ ऊपर उठाये हुए है, नीचे की ओर अपने कंकाल शरीर को फैलाये हुए रौद्र काली की प्रतिमा से समस्त निरूपण किया गया है। ऐलौरा की 29 वीं गुफा में स्थित

भैरव-प्रतिमा को भी इसी रूप में दर्शाया गया है। किन्तु इसमें पार्वती को भयभीत होकर अपने वक्ष पर हाथ को रखे हुए अंकित किया गया है।

कामान्तक प्रतिमा

शिव द्वारा कामदेव के भस्म किये जाने की कथा को आधार बनाकर जो प्रतिमा निर्मित की जाती है उसे कामान्तक प्रतिमा कहते हैं। इस प्रतिमा का उल्लेख अनेक शैवाग्रमों में हुआ है। प्रतिमाशास्त्रीय विधन के अनुसार इसमें शिव पालथी मारकर बैठे होते हैं। उनका बाया हाथ योग मुद्रा में गोद में रखा हुआ प्रदर्शित किया जाता है।³⁰ उनके ललाट पर स्थित तीसरे नेत्र से निकलती हुई ज्वालाएं दिखायी जाती है। इस प्रतिमा में शिव के सामने कामदेव को भूमि पर गिरा हुआ तथा कामदेव के साथ उसकी पत्नी रति का भी प्रदर्शन होना चाहिए। गंगैकोण्डचोलपुरम् मंदिर में स्थित शिव की कामान्तक प्रतिमा का उल्लेख जीतेन्द्रनाथ बनर्जी³¹ ने किया है। इस प्रतिमा में सम्पूर्ण कथानक को तीन भागों में उत्कीर्ण किया गया है। मध्य में आंखें मुंदे हुए, ध्यान में मग्न शिव योगासन मुद्रा में प्रदर्शित हैं। उनके बांये पार्श्व में कामदेव तथा भयभीत रति हैं शिव के दाहिनी ओर पार्वती तथा उनके गण अंजलिबद्ध मुद्रा में प्रदर्शित है। शिव का तीसरा नेत्र कुछ खुला हुआ है, जिससे प्रतीत होता है कि शिव अपने तीसरे नेत्र की ज्वाला से काम को भस्म कर देने को उद्यत हों।

गजासुर संहार-प्रतिमा

इस प्रतिमा से सम्बन्धित कथा के अनुसार काशी में एक ब्राह्मण कृतिवाशेश्वर लिंग की उपासना जिस समय कर रहा था, उसी समय गज रूप में एक असुर आकर पूजा में विघ्न उत्पन्न करने लगा, तब शिव ने आकर उस गज-दैत्य का संहार किया और गज-चर्म को अपने शरीर पर धारण किया। अशुमद्भेदागम् के अनुसार गजासुर संहार-प्रतिमा में शिव की चार या आठ भुजाएं प्रदर्शित की जानी चाहिए। उनका बाया हाथ गज के ऊपर दाया हाथ ऊपर की ओर उठा हुआ तथा गज की पूंछ उनके मस्तक पर होनी चाहिए। गज की आकृति इस प्रकार निर्मित की जानी चाहिए, जिससे कि प्रतिमा के पीछे प्रभामण्डल बन जाय। एलौरा की गुफा नं० 14 और 16 में आठवीं शती की दो गजासुरसंहार

प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं।³²

कालारि-प्रतिमा

इस प्रतिमा से सम्बन्धित पौराणिक कथा निम्न प्रकार है- भृकुण्ड नामक ऋषि को कोई पुत्र नहीं था, अतः पुत्र प्राप्ति के लिए उन्होंने शिव की उपासना प्रारम्भ की। शिव ने प्रसन्न होकर उनके समक्ष दो विकल्प रखे कि उन्हें एक योग्य पुत्र चाहिए या अनेक अयोग्य पुत्र। ऋषि ने एक योग्य पुत्र की मांग की। शिव ने उन्हें एक योग्य पुत्र का वरदान दिया किन्तु उसकी आयु मात्र 16 वर्ष ही थी। पुत्र हो जाने पर जब बालक की आयु 16 वर्ष होने को आयी तो उसे अपनी भावी मृत्यु का बोध हुआ। अतः वह तीर्थ यात्रा पर निकल पड़ा और त्रिकोडबूर में उसने शिवलिंग की पूजा आरम्भ की। ठीक उसी समय उसकी आयु 16 वर्ष हो गई।³³ यमदूत उसकी आत्मा को लेने आये, किन्तु उसे ले जाने में वे असमर्थ रहे, फलतः यमराज को स्वयं ही लेने के लिए आना पड़ा और उन्होंने उसकी आत्मा को बांध लिया। ठीक उसी समय शिव ने प्रकट होकर यमराज पर पैर से प्रहार किया और अपने भक्त को यह वरदान दिया कि उसकी आयु सदैव 16 वर्ष ही रहेगी।

इस कथा के आधार पर निर्मित की जाने वाली प्रतिमा का विवरण शैवागमों में हुआ है। जिसके अनुसार शिव का दाहिना पैर भूमि पर ओर बाया पैर सामने यम की छाती तक उठा होना चाहिए। यम के दो हाथ, और दो दांत प्रदर्शित किये जाते हैं। यम के हाथों में पाश-बन्धन होना चाहिए। यम का शरीर भय कम्पित रूप में प्रदर्शित किया जाना चाहिए। शिव की इस प्रतिमा के दो उदाहरण ऐलौरा की गुफा और कैलाश नाथ मन्दिर में हैं। तंजौर के बृहदेश्वर मंदिर में कालारि प्रतिमा का अंकन किया गया है जो शैवागमों के विवरण पर आधारित है।

त्रिपुरान्तक प्रतिमा

इस प्रतिमा से सम्बन्धित कथा का विवरण महाभारत मत्स्य पुराण, भागवतपुराण और हरिवंश पुराण आदि में मिलता है, जो इस प्रकार है- तारकासुर नामक दैत्य तीन पुत्र थे, जिन्हें पृथ्वी, पाताल और आकाश में एक एक पुर प्राप्त था, जिसे वे अपनी इच्छानुसार कहीं भी ले जा सकते थे, साथ ही उन्हें

यह वरदान था कि एक हजार वर्ष के बाद यह तीनों ही पुर एक हो जायेंगे और इसका विनाश एक ही बाण से सम्भव होगा। इस वरदान के कारण उन्होंने घोर अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया। फलतः देवताओं ने शिव से प्रार्थना की। अतः शिव ने वेद को धनुष के रूप में सूर्य को प्रत्यंचा के रूप में उपयोग किया, ब्रह्मा उनके सारथी बने, विष्णु ने बाण का स्वरूप तथा अग्नि ने बाण के फल का स्वरूप धारण किया। शिव ने इन सबके सम्मिलित प्रयास से त्रिपुरों तथा उन असुरों का विनाश किया। इस कथा का आधार वैदिक परम्परा में भी मिलता है। वाजसनेयी संहिता के अनुसार असुरों के तीन पुरों का विनाश अग्नि ने किया था।

प्रतिमाशास्त्रीय विधान³⁴ के अनुसार त्रिपुरान्तक प्रतिमा रक्त वर्ण की और तीन नेत्र वाली होती है, उनके बांये पार्श्व में दवों को स्थित प्रदर्शित किया जाता है। त्रिपुरान्तक रूप में शिव को दस भुजाओं वाला बताया गया है। वे अपने अधोभाग में व्याघ्र चर्म और ऊपरी भाग में मृग चर्म को धारण किये रहते हैं। अंशुमभद्भेदागम् में शिव के इस स्वरूप को आठ प्रकार का बतलाया गया है। शिल्परत्न में भी आठ प्रकार के त्रिपुरान्तक रूपों का वर्णन हुआ है। किन्तु शिव के इन आठ रूपों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। गोपीनाथ राव³⁵ ने एलौरा और दशावतार मन्दिर में स्थित त्रिपुरान्तक प्रतिमा का उल्लेख कियया है। दशावतार मन्दिर में स्थित प्रतिमा में शिव को रथ पर आरूढ़ दस भुजाओं के रूप में प्रदर्शित किया गया है। कैलाश मंदिर में प्राप्त होने वाली त्रिपुरान्तक प्रतिमा में शिव के दो ही हाथ प्रदर्शित किये गये हैं कांजीवरम् के कैलाशनाथ मंदिर में अष्टभुजी, रथारूढ़ शिव को आलीढासन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।

तंजौर के वृहदेश्वर मन्दिर में स्थित, कांस्य, निर्मित, धनुष-वाणधारी शिव की त्रिपुरान्तक प्रतिमा का उल्लेख जीतेन्द्रनाथ बनर्जी किया है। तंजौर से ही प्राप्त चतुर्भुजी शिव की त्रिपुरान्तक प्रतिमा में शिव के पार्श्व में पार्वती सिति है और उनके पीदे के दो हाथों में त्रिशूल और मृग प्रदर्शित है। पट्टडकल से प्राप्त और राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में सुरक्षित शिव की त्रिपुरान्तक प्रतिमा भी दर्शनीय है। इस प्रतिमा में शिव को धनुष बाण लिए हुए प्रदर्शित किया गया है।³⁶

अन्धकासुर वध प्रतिमा

अन्धकासुर वध प्रतिमा निर्माण के आधार स्वरूप जो कथा है, उसके अनुसार-हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यपु दोनों दैत्यों के वधोपरान्त, हिरण्यकश्यपु के पुत्र प्रह्लाद पिता के राज्य को त्याग कर विष्णु भक्ति में तल्लीन हो गये। प्रह्लाद के बाद अन्धकासुर का असुर-राज्य प्रारम्भ हो गया। उसने अपनी तपश्चर्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर बड़े बड़े वरदान प्राप्त कर लिये और समस्त लोक को पीड़ित करने लगा। उसकी पीड़ाओं से पीड़ित होकर इन्द्र शिव के पास पहुंचे ही थे कि अन्धकासुर भी पार्वती को लेने के लिए पहुंच गया। तुरन्त ही शिव ने उससे युद्ध करने के लिए वासुकि, धनंजय और तक्षक नामक नागों की रचना की। उसी समय नील नामक असुर गज-रूप में शिव वध के लिए पहुंच गया। किन्तु वीरभद्र ने नीलासुर का वध कर उसके चर्म को शिव को प्रदान कर दिया। इस चर्म को धारण कर वासुकि, तक्षक और धनंजय नामक नागों से अलंकृत, त्रिशूल को हाथ में लेकर शिव ने अन्धकासुर के वध के लिए प्रस्थान किया। अन्धकासुर ने अपनी माया से अगणित, अपने ही स्वरूप वाले असुरों की रचना की। उसके शरीर से गिरे प्रत्येक रक्त बिन्दु से एक असुर उत्पन्न हो जाता था, तब शिव ने मूल अन्धकासुर के वक्ष में त्रिशूल मारा और उसके रक्त को धरती पर न गिरने देने के लिए अपने आनन से निकलती हुई ज्वाला से योगेश्वरी शक्ति की रचना की जिसने अन्धकासुर के शरीर से रक्त के निकलते ही पी जाती थी।³⁷ अन्य देवताओं ने भी इस युद्ध में अपनी-अपनी शक्तियों की रचना कर सहयोग हेतु भेजा था। इस प्रकार अन्धकासुर वध में शिव की योगेश्वरी महाशक्ति के साथ-साथ ब्रह्माणी आदि सप्तमातृकाओं के सहयोग की भी कथा है।

इस कथा के आधार पर निर्मित की जानेवाली प्रतिमा में शिव के आठ हाथ दिखाये जाते हैं। उनके हाथों में त्रिशूल होना चाहिए, जिससे वे अन्धकासुर पर प्रहार करते हुए प्रदर्शित हों, भूमि पर खड़ी योगेश्वरी देवी के हाथ में पात्र होना चाहिए, जिसमें अंधकासुर का रक्त गिर रहा हो। अन्धकासुर वध प्रतिमा का सुन्दर चित्रण एलिफेन्टा और ऐलौरा के गुहामन्दिरों में किया गया है। त्रिपुरी में खोरमाई में संग्रहीत एक शिलापट्ट पर अन्धकासुर वध का सुन्दर पौराणिक दृश्य अंकित है।³⁸ इसमें पट्टियों के मध्य में एक भीतर की ओर धंसा हुआ आयताकार कोष्ठ है, जिसमें अन्धकासुर का वध करते हुए

शिव उत्कीर्ण है। उनका बांया ऊपर उठा हुआ पैर धराशायी असुर के सिर को रौंदता हुआ दिखाया गया है। उनके चार हाथों में से ऊपरी दांये हाथ में डमरू और निचले बांये हाथ में कपाल है। शेष दो हाथों में वे शूल लिए हुए हैं, जिसके ऊपर अन्धकासुर का शरीर टंगा हुआ है। पट्टडकल से प्राप्त शिव के अन्धकासुर वध प्रतिमा में चतुर्भुज कशव को आलीढ़ मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है, वे अन्धकासुर का वध शूल से कर रहे हैं। नीचे योगेश्वरी देवी को अन्धकासुर के शरीर से निकलते हुए रक्त का पान करते हुए चित्रित किया गया है।

वीर-भद्र प्रतिमा

दक्षप्रजापति के यज्ञ विध्वंसक शिवरूप का नाम वीरभद्र है। इस यज्ञध्वंस की कथा के अनेक विवरण कूर्म, वराह, भागवत तथा शिवपुराण आदि में संग्रहीत है। भागवत पुराण के विवरण के अनुसार शिव के इस रूप में उनकी हजार भुजाएं थीं, मेघ के समान श्यामवर्ण था, सूर्य के समान जलते हुए तीन नेत्र थे, विकराल दाढ़े थीं, अग्नि की ज्वालाओं के समान लाल-लाल जटायें थीं, गले में नरमुण्डों की माला थी और हाथों में तरह-तरह के अस्त्र-शस्त्र थे। प्रतिमाशास्त्रीय विधान के अनुसार इस प्रतिमा में शिव को चतुर्भुजी दिखाया जाता है। उनके तीन नेत्र तथा बाहर की ओर निकले हुए दांत को दिखाकर उनकी भयंकरता को स्पष्ट किया जाता है। उनके बांये पार्श्व में भद्रकाली की प्रतिमा तथा दाहिनी ओर सश्रृंग छागशिर दक्ष की प्रतिमा निर्मित की जाती है। शिव के इस रूप की ताम्रनिर्मित एक प्रतिमा मद्रास संग्रहालय में सुरक्षित है। साथ ही तेंकाशी के मन्दिर के मण्डप स्तम्भ और कांजीवरम् के कैलाशनाथ मन्दिर में उत्कीर्ण यह प्रतिमा दृष्टव्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं टिप्पणियां -

1. ऋ. वे., 6,4,1,
2. अ. दे., 6, 13, 2
3. काने, पी.वी., हिस्ट्री ऑफ धर्मराष्ट्र, भाग 1, पृ० 139
4. प्र० वि०, पृ० 62, 64
5. पाणिनी की आष्टाध्यायी पर पतंजलि का भाष्य, 5/2/36
6. डी. एच. आई. पी., 446
7. महाभारत, शान्तिपर्व, 64, 7
8. डी. एच. आई. पी. 451
9. हांडर एम० वेस्ट्रप, प्रिमिटिव सि० ए० इ० इ० फे० वर०, पृ० 26
10. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 74, 2-4
11. कृष्ण दत्त वाजपेयी, फलक, 4 उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक केन्द्र, भाग 4
12. मजूमदार, आर. सी., वैदिक एज, 186-87
13. महाभारत वन पर्व, अ. 88 पृ० 507
14. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 44, 14-16
15. भा०पु०, 8/7/30
16. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 44, 20
17. वही, 44, 17
18. अग्रवाल, वी.एस., इण्डियन आर्ट, पृ० 283
19. वही, पृ० 286
20. रूपमण्डन, 35, 16
21. सिंह, वी. पी., भारतीय कला को बिहार की देन, पृ० 131
22. वही, पृ० 136
23. अग्रवाल, वी. एस., इण्डियन आर्ट, प० 258

- 24.विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 108
- 25.शिल्परत्न, 22, 15
- 26.विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 5,6,11-13
- 27.गुप्त, पी एल, गुप्त साम्राज्य, पृ0 571
- 28.सिंह, वी. पी., भारतीय कला को बिहार की देन, पृ0 130-135
- 29.बनर्जी, आर. डी., द हासिया ऑफ त्रिपुरी एण्ड देयर मान्यूमेन्ट्स, मेमोरीज ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डियन, सं0 23
- 30.ललित कला, 1-2, फलक 36,4
- 31.शिल्परत्न, 49,21
- 32.शास्त्री, अजयमित्र, त्रिपुरी, पृ0 145
- 33.प्रतिमा विज्ञान, पृ0 264
- 34.वही, पृ0 266
- 35.भागवत पुराण, 4,5,2-3
- 36.प्रतिमा विज्ञान, पृ0 266
- 37.वही, पृ0 267
- 38.वही, पृ0 271

र-कन्द एवं गणेश प्रतिमाए

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

सर्वभूतहिते

सर्वसुखार्थे

स्कन्द और गणेश

स्कन्द कार्तिकेय

ऋग्वेद में अग्नि का संबंध युद्ध से जोड़ा गया है। युद्ध में अग्नि देवताओं के सहायक के रूप में हैं तथा उन्हें सहस्रजीत कहा गया है। दस्युओं के पराहन्ता भी उनका एक स्वरूप है। अग्नि के इन विशेषणों को लेकर ए. के. चटर्जी¹ इनकी समानता का प्रतिरूप महाकाव्य युग के श्रेष्ठ नायक कुमार जो कि युद्ध के देवता के रूप में जाने जाते हैं, में पाते हैं। इन दोनों ही समानान्तर देवताओं में कार्य की समानता है। इनके अतिरिक्त कुमार का कई बार उल्लेख हुआ है जिनका सम्बन्ध अग्नि से है। अथर्ववेद में कार्तिकेय युद्ध में अपने अन्य साथियों के साथ महत्वपूर्ण कार्यों को सम्पन्न करते हुए वर्णित है। अतः इस धारणा को लेकर निश्चय ही स्कन्द कार्तिकेय का सम्बन्ध अग्नि से जोड़ा जा सकता है। शतपथ ब्राह्मण में हय स्वरूप और भी स्पष्ट है। जहां कुमार के उल्लेख के साथ उन्हें अग्नि या रुद्र का नवां रूप दिखाया जाता है। एतरेय ब्राह्मण² में सुब्रह्मण्य को व्यास कहा गया है। सूत्र काल तक आते आते कार्तिकेय एक महत्वपूर्ण देवता बन चुके थे। हिरण्यकेशिन³ गृह्यसूत्र में स्कन्द का उल्लेख विष्णु रूप में तथा अन्य देवों के साथ उपलब्ध होता है। बौधायन धर्मशास्त्र में स्कन्द में अनेक नाम सनतकुमार, सकन्द, षण्मुख विशाल, महासेन और सुब्रह्मण्य मिलते हैं। सुब्रह्मण्य नाम से स्कन्द कार्तिकेय का सर्वमान्य स्वरूप आज भी दक्षिण भारत में सर्वत्र देखने को मिलता है। विभिन्न पुराणों में स्कन्द के आविर्भाव की अनेक कथाएं अनेक तरह से प्रस्तुत की गई हैं। वायु पुराण में और ब्रह्माण्ड पुराण में स्कन्द का शिव पार्वती और अग्नि से सम्बन्ध प्रस्तुत किया गया है।⁴ प्रथम दोनों पुराणों में सकन्द को जान्हवीसुत और शंकरात्मज कहा गया है। ब्रह्माण्ड पुराण के एक वर्णन में स्कन्द को शिव और पार्वती के संयोग से उत्पन्न माना गया है। वायु पुराण स्कन्द को शिव के पुत्र के रूप में उल्लेख करता है। ठीक इसी तरह मत्स्य पुराण में स्कन्द को पार्वती से उत्पन्न माना जाता है।⁵ स्कन्द का सम्बन्ध युद्धादि से रहने के कारण कई पुराणों में उन्हें सेनापति के रूप में सम्बोधित किया गया है। वायु और ब्रह्माण्ड पुराण में स्कन्द को सुरसेनापति का सम्बोधन मिला है। विष्णु पुराण में श्री और विष्णु की तुलना क्रमशः देवसेना और सेनापति अर्थात् स्कन्द से की गई है। यह ज्ञातव्य है कि मत्स्य

पुराण में देवसेना को स्कन्द की पत्नी माना गया है। विष्णु पुराण में स्कन्द की शक्ति को विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कहा गया है। पुराणों में स्कन्द का वर्णन अनेक बार आया है जो अनेक महत्व को प्रदर्शित करता है। उनका सम्बन्ध अग्नि और सूर्य के साथ भी दिया गया है। यह स्थिति इस तथ्य से और भी स्पष्ट किया गया है। जहां मत्स्य पुराण में ग्रह शान्ति के अवसर पर शिव पार्वती और विष्णु आदि नामों के उल्लेख के साथ-साथ स्कन्द के आवाहन का भी उल्लेख किया गया है।⁶

स्कन्द का सम्बन्ध गंगा, अग्नि, शिव तथा पार्वती के साथ भिन्न भिन्न रूपों में मिलता है। रामायण में भी स्कन्द को अग्नि और गंगा के संयोग से उत्पन्न माना जाता है। अग्नि, शिव और पार्वती से संबंधित है। महाभारत में भी एक जगह स्कन्द को अग्नि और स्वाहा तथा शिव और पार्वती का पुत्र माना गया है। भण्डाकरकर का विचार है कि कार्तिकेय रूद्र के गणों के एक नायक थे। संभवतः इसलिए इस विचार से इस मत का उदय हुआ कि देवताओं के सेनापति थे ऐतिहासिक काल में भी इनका सम्बन्ध शिव से था।⁷

कार्तिकेय के प्रतिमा - विधान

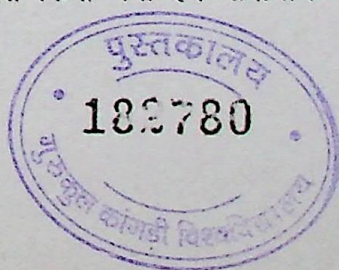
कार्तिकेय की प्रतिमा के लक्षण वराहमिहित कृत बृहत्संहिता में देखने को मिलता है। यहां उन्हें बालक रूप में प्रस्तुत करने का निर्देश हुआ है तथा इसके साथ ही साथ हाथ में शक्ति और मयूर युक्त ध्वजा धारण कराने को कहा गया है। विष्णु धर्मोत्तर में 6 मुखाकृति वाले केश को तीन या पांच पंक्तियों में संवारे हुए, लाल वस्त्र धारी, मयूर पर सवार होना चाहिए। वे दाहिने के दो हाथों में मुर्गा पकड़े हुए होते हैं। वैजयन्ती पताका और शक्ति बायें हाथ में होती है। इसमें उनके तीन स्वरूपों में व्यक्त किया है।⁸ जिनसे उनका निर्माण किया जा सकता है। उन्हें मध्याह्न के सूर्य के समान परम तेजोमय, सुकुमार, कुमार कमल के भीतरी भाग के समान वर्ण वाले, मयूरवाहन, दण्ड एवं चीर से सुशोभित बनाना चाहिए उनकी प्रतिमा इष्ट नगर में द्वादश भुजावाली, तुच्छ नगर में चतुर्भुज तथा वन ओर साधारण ग्राम में द्विभुज बनाना चाहिए। उनके दाहिनी ओर केयूर तथा करक से विभूषित 6 हाथ बनाने चाहिए जिनमें एक हाथ वरद मुद्रा में तथा अभय मुद्रा में हो। शेष हाथों में शक्ति, पाश, खड्ग, हार और शूल हों। बांयी ओर के हाथों में धनुष, पताका, मुष्टि, प्रसारित, तर्जनी, ढाल तथा मुर्गा

बनाना चाहिए। चतुर्भुज प्रतिमा⁹ के बायीं ओर दो हाथों में शक्ति और पाश तथा दाहिनी ओर के तीसरे हाथ में तलवार और चौथे में वरद मुद्रा में तथा प्रमुद्रा में हो। दो भुजाओं वाली प्रतिमा के बायें हाथ में शक्ति तथा दाहिने हाथ को कुक्कुट के ऊपर रखा हुआ बनाना चाहिए। महाभाष्य में पतंजलि ने शिव, स्कन्द और विशाख की मूर्तियों का उल्लेख किया है।¹⁰ अतः स्पष्ट है कि उनके समय में स्कन्द की पूजा मान्य थी। कुषाण सम्राट कनिष्क के कुछ सिक्कों पर 'स्कन्दो महासेना कुमारो और विजागो' नामों के साथ तीन आकृतियां प्राप्त होती हैं। इससे हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि कुषाण काल तक आते-आते स्कन्द की पूजा व्यापक रूप में होने लगी थी। मुद्राशास्त्री भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि ई. सन के प्रारम्भ में कार्तिकेय की पूजा लोकप्रिय हो चुकी थी। दूसरी शती ई. सन् के योद्धों ने अपने चांदी के सिक्कों पर स्कन्द कार्तिकेय को बहुत की आदर के साथ स्थान दिया है जिसमें स्कन्द को 6 हाथों के साथ प्रस्तुत किया गया है।¹¹

दक्षिण भारतीय ग्रन्थों¹² में भी स्कन्द कार्तिकेय के प्रतिमा, लक्षण को उत्तर भारतीय ग्रन्थों के विवरण के समान ही, थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ स्वीकृत किया गया है। अंशुमदभेदागम्, सुप्रभेदागम्, उत्तरकामिकागम्, पूर्वकर्णागम् आदि में इस देवता को विभिन्न रूपों में वर्णित किया गया।

पुराणों, आगमों तथा शिल्पग्रन्थों¹³ के विवरण के आधार पर कार्तिकेय प्रतिमा निर्माण का जो स्वरूप निश्चित होता है, उसके अनुसार देवता सूर्य और कमल जैसा पीतवर्ण वाला, एकमुखी अथवा षडमुखी, तरुण युवक के रूप प्रदर्शित होता है। द्विभुज रूप में उसके बांये हाथ में शक्ति और दाहिने में कुक्कुट तथा वाहन मयूर होता है। चतुर्भुजी रूप में उसके बांये हाथों में शक्ति, पाश तथा दांये हाथों में एक हाथ में तलवार और दूसरा वरद या अभय मुद्रा में होता है। उसका वाहन मयूर होता है। द्वादशभुजी रूप में उसके दांये हाथों में शक्ति, पाश, खड्ग, बाण, त्रिशूल, वरद या अभय-मुद्रा होती है। बांये हाथों में वे धनुष पताका, मुष्टि, तर्जनी, ढाल और कुक्कुट धारण किये होते हैं।¹⁴

दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में इस देवता को ज्ञानशक्ति, सुब्रह्मण्य, स्कन्द, सुब्रह्मण्य, सेनापति, गजवाहन, तारकारी, सेनानी, बालस्वामी इत्यादि नामों से अभिहित किया गया है। गोपीनाथ राव ने उन नामों के अनुरूप निम्नलिखित प्रतिमाओं का उल्लेख किया है :



085031

शक्तिधर	षडमुख
स्कन्ध	तारकारि
सेनापति	सेनानी
सुब्रह्मण्य	ब्रह्मशास्त्र
गजवाहन	वल्लि-कल्याण सुन्दर
शारणभव	बालस्वामी
कार्तिकेय	क्रौंचमेत्ता
कुमार	शिखिवाहन

श्री तत्त्वनिधि में अग्निजात, सौरभेय, गांगेय, गुह, ब्रह्मचारि, देशिक आदि कुछ प्रकारों का उल्लेख किया गया है। प्राचीन भारतीय कला में कार्तिकेय का अंकन सामान्यतया खड़े अथवा बैठे दोनों ही रूपों में मिलता है और वे हाथ में शक्ति धारण किये होते हैं। उनके वाहन के रूप में मयूर का अंकन होता है। कार्तिकेय की आरम्भिक प्रतिमाओं का निर्माण कुषाणकालीन मथुरा तथा गान्धार कला में हुआ है। इन प्रतिमाओं में कार्तिकेय की द्विभुजी रूप में दिखाया गया है। उनका दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में और बांये में शक्ति लिए हुए हैं, देवता के वाहन के रूप में कभी मयूर और कभी कुक्कुट प्रदर्शित किया गया है। मथुरा से प्राप्त कार्तिकेय की एक खड़ी प्रतिमा में एकमुखी, द्विभुजी कार्तिकेय के बांये हाथ में लम्बी शक्ति और दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। इस प्रतिमा में देवता का वाहन प्रदर्शित नहीं है। वासुदेव शरण अग्रवाल¹⁵ ने संरचना की दृष्टि से इस प्रतिमा को बोधिसत्व प्रतिमाओं के समान बतलाया है।

गुप्तकालीन स्कन्द-कार्तिकेय मूर्तियां और अभिलेख का उद्धरण

गुप्तकाल में स्कन्द-कार्तिकेय को सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली। गुप्त शासकों के विषय में यह सर्वज्ञेय है कि वे

अपने को परम भागवत कहने में अपना गौरव समझते थे फिर भी कुमार गुप्त के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि उनके माता-पिता के हृदय में भी स्कन्द-कार्तिकेय के प्रति विशेष रुचि थी और उसी के फलस्वरूप अपने प्रिय पुत्र का नाम कुमार गुप्त रखा। इसके अनंतर कुमार गुप्त के द्वारा किये गये कार्यों से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। कुमार गुप्त ने ही गुप्त शासकों में सबसे पहले अपने सिक्कों में स्कन्द-कार्तिकेय के वाहन मयूर को स्थान दिया और स्कन्द की आकृति को भी सिक्कों में ढलवाया। जे० एन० बनर्जी¹⁶ का मत है कि कुमार गुप्त ने हूणों और पुष्यमित्रों के आक्रमण को असफल कर दिया था इसलिए उसने युद्ध के देवता कुमार के सम्मान में अपने पुत्र का नाम स्कन्द गुप्त रखा था। स्कन्द गुप्त के संघर्षपूर्ण शासनकाल में भी स्कन्द-कार्तिकेय का काफी प्रसार हुआ। स्कन्द कार्तिकेय की अनेकों प्रतिमाएं उत्तर भारत में प्राप्त हुई हैं। जो उनकी लोकप्रियता का परिचायक हैं। इन स्थलों में मथुरा¹⁷, भूमरा, पावाया, वैराट, सालमलाजी, बनारस, कन्नौज, तुमैन आदि प्रमुख हैं। मार्शल ने मीटा से प्राप्त स्कन्द कार्तिकेय की मृणमूर्ति जो संभवतः तीसरी चौथी सदी ई.पू. की है, का उल्लेख किया है। मीटा से मयूर आकृति के सहित एक मुहर भी उपलब्ध हुई है। वसाढ़ से भी मयूर युक्त मुहर प्राप्त की गई है। गुप्तकाल में कार्तिकेय की स्थानक तथा मयुरासन दोनों तरह की प्रतिमाएं देखने को मिलती हैं।

मथुरा कला की नगरी गुप्तकाल से बहुत पहले से रही है। वहां से गुप्तकालीन अनेकों स्कन्द कार्तिकेय को प्रतिमाएं प्रकाश में आई हैं। इस समय में भी पूर्व परम्परानुसार अनेकों सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण हुआ। मथुरा संग्रहालय स्कन्द-कार्तिकेय की गुप्तकालीन प्रारम्भिक प्रतिमा है। इस प्रतिमा की आकृति लघुरूप में है, इसकी दो भुजाएं हैं जिससे दाहिने हाथ में शक्ति और बायें हाथ को आीय मुद्रा में उल्लिखित किया है। इसी संग्रहालय में मूर्ति क्रमांक 466 कार्तिकेय¹⁸ की एक भव्य प्रतिमा है। दुर्भाग्यवश इस भव्य प्रतिमा का दाहिना हाथ खण्डित है। लेकिन सम्भवतः बीजपूरक लिए जंघस्त है। बायें हाथ में अपने प्रिय आयुध शक्ति को ग्रहण किये हुए है। एकावली, गलाहार, बाजूबन्द आदि आभूषणों से प्रतिमा को सज्जित किया गया है। सिर पर घुंघराले बालों को उकेरा गया है जिसकी लटें कंधों को छू रही हैं। ब्रह्मा जी अभिषेक कर रहे हैं और शिव स्कन्द का घटाभिषेक कर रहे हैं, प्रतिमा के दाहिने ओर त्रिमुख ब्रह्मा है और बायें शिव हैं। यहां पर ब्रह्मा और शिव दोनों ही पवित्र जल को

अपने घट से स्कन्द कार्तिकेय के सिर पर गिरा रहे हैं। इसमें कथा तत्व इस तरह है कि ब्रह्मा और शिव दोनों ही तारकासुर राक्षस से होने वाले युद्ध के प्रमुख सेना पति स्कन्द कार्तिकेय का अभिषेक कर रहे हैं। इस प्रतिमा में ब्रह्मा और शिव के अनन्तर दो अन्य छोटी आकृतियों को उकेरा गया है जिसमें दाहिनी ओर की आकृति सिर विहीन है जबकि बायीं ओर की आकृति का सिर बकरे का है और अपने ऊपर उठाये हुए हाथ में त्रिशूल धारण किए है जो कि नेगमेश की आकृति प्रतीत होती है। इसे युद्ध का पूर्व संकेत कहा जा सकता है।¹⁹

कार्तिकेय के ध्वज पर कुक्कुट (मुर्गा) का प्रदर्शन होता है। कानपुर जनपद में लाला भगत नामक ग्राम से प्राप्त लाल पत्थर के एक अठपहल स्तम्भ पर कुक्कुट ध्वज का अंकन हुआ है। उस पर कुमारवरस लेख खुदा है, जो स्पष्ट रूप से कुकार स्कन्द का सतम्भ बताता है।²⁰ अयोध्या के कुछ शासकों के सिक्कों पर भी वृक्ष के पास कुक्कुट का अंकन किया गया है। मुद्रालेखों में उसके महासेन, स्कन्द, विशाख, कुमार आदि नाम दिये गये हैं। भण्डारकर महोदय ने हुविष्क के कुछ सिक्कों पर अंकित आकृतियों की संख्या चार, स्कन्द, कुमार, विशाखो, और महासेन निश्चित की है और उन्हें चार देवता स्वीकार किया है। बनर्जी महोदय ने मुद्रा पर उत्कीर्ण तीन आकृतियों स्कन्दकुमार, विशाख और महासेन का अभिज्ञान किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्कन्द देवताओं का एक व्यूह-सा निश्चित हो गया था, जिसमें एक से अधिक देवों की गणना की जाती थी।

गुप्तवंशीय शासकों ने भी अपनी मुद्राओं पर कार्तिकेय का अंकन सगर्व किया है। कुमार गुप्त प्रथम की मुद्राओं पर कार्तिकेय को बांये हाथ में शक्ति धारण किये हुए मयूर पर सवार प्रदर्शित किया गया है। तृतीय-चतुर्थ शती ई. की मार्शल द्वारा भीटा से प्राप्त एक मुहर पर विन्ध्यवेध महाराजस्य महेश्वर-महासेनातिष्ठ राजस्य वृषध्वजस्य गौतमीपुत्रस्य²¹ खुदा है। जिससे सूचित होता है कि महाराजा गौतमी पुत्र ने अपने इष्टदेव कार्तिकेय के लिए अपने राज्य का निर्माण किया था। इसी प्रकार विलसड़, जिला एटा से प्राप्त अभिलेख में स्वामी महासेन के मन्दिर²² में प्रतोली निर्मित कराये जाने का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि युद्ध देव कार्तिकेय उत्तर भारतीय राजओं के इष्ट देव के

रूप में स्वीकृत रहे हैं और उत्तरापथ के अधिकांश शासकों ने बड़े ही गौरव और सम्मान के साथ इस देव को अपनी मुद्राओं तथा अभिलेखों में सम्मानित किया है।

गुप्तकाल तक आते आते कार्तिकेय को मयूरासीन प्रदर्शित किया जाने लगा। इस काल की विविध अलंकरणों से युक्त कार्तिकेय की एक सुन्दर प्रतिमा भारत कला भवन काशी में सुरक्षित है। जिसमें मयूरासीन देवता के हाथों में मातुलुंग और शक्ति का प्रदर्शन है। इस प्रतिमा में प्रतिमाशास्त्रीय परम्पराके निर्वाह के साथ ही साथ उत्कृष्ट शिल्प का भी प्रदर्शन हुआ है। मयूर के पंखों को फैलाकर देवता के प्रभावली के रूप में अति कलात्मक ढंग से संयोजित किया गया है। बिहार के शाहाबाद से प्राप्त और पटना संग्रहालय में सुरक्षित प्रतिमा में देवता को मयूर पर ललितासन मुद्रा में बैठे प्रदर्शित किया गया है। उनका बायाँ पैर नीचे लटक रहा है और दाहिना मयूर के गले से लिपटा आसन पर ही मुड़ा हुआ है। देवता के एक हाथ में शक्ति और दूसरा वरद मुद्रा में है। वाहन मयूर अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवता को देखने की चेष्टा कर रहा है।

गणपति/ गणेश प्रतिमा

हिन्दू देवमण्डल में गणपति का महत्वपूर्ण स्थान है। विघ्ननाशक और मंगलकारी देव के रूप में इनका अस्तित्व है। गणपति और गणेश नाम से अभिहित इस देवता को शिव और पार्वती के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है। गणपति और गणेश का शाब्दिक अर्थ गणों का अधिपति और गणों का ईश है। ऋग्वेद में मरुण गणों की चर्चा की गई है। गणपति शब्द का प्रयोग भी ऋग्वेद की एक ऋचा में हुआ। वस्तुतः गणपति शब्द का प्रयोग इन्द्र और वृहस्पति के सन्दर्भ में एक विशेषण के रूप में ही हुआ है। कालान्तर में चलकर शिव और उमा के पुत्र को शिव के गणों के अधिपति के रूप में गणपति संज्ञा प्रदान की गई। पूर्ववर्ती ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर गणपति का उल्लेख हुआ है, परन्तु पौराणिक युग के गणपति या गणेश के रूप में उनकी कल्पना नहीं हुई है।²³ वस्तुतः दैनिक देवमण्डल में गणेश की गणना नहीं है। ई.पू. छठी शती के बौधायन धर्मसूत्र में गणेश के तर्पण का उल्लेख हुआ है, इसी प्रसंग में गणेश के अनेक नामों की चर्चा की गई है, जैसे - विघ्न, विनायक, गजमुख, एकदन्त,

वक्रतुण्ड, लम्बोदर आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि पौराणिक युग में गणपति या गणेश के जिस स्वरूप का विकास हुआ है, उसके अनेक तत्वों की कल्पना छठी ई.पू. के लगभग कर ली गई थी। गणपति का सम्बन्ध विद्या के देवता से भी जोड़ा गया है। इनका एक अन्य नाम विनायक भी है। महाभारत से ज्ञात होता है कि उस समय विनायक बहुत बड़ी संख्या में थे, किन्तु गृह्यसूत्रों में इनकी संख्या घटाने की प्रवृत्ति दिखायी गई है। मानव गृहसूत्र में विनायकों का उल्लेख हुआ है²⁴ उनकी संख्या चार है, शालकंटक, कूष्माण्डराजपुत्र, उस्मित और देवयजन। यहां पर यह भी वर्णित है कि विनायकों के द्वारा आविष्ट हो जाने पर लोगों की मनः स्थिति और कार्यकलाप में विषमता आ जाती है। उन्हें बुरे स्वप्न आने लगते हैं, मनुष्य भयावह तथा विस्मयकारी दृश्य देखने लगता है, कन्याओं का विवाह अवरूद्ध हो जाता है, राजकुमारों का राज्य प्राप्त नहीं होता, माताओं के पुत्रों की मृत्यु होने लगती है, स्त्रियां बन्ध्या हो जाती है, वणिकों का व्यापार विनष्ट हो जाता है। फलतः मानव गृह्यसूत्र में विनायकों की शान्ति के लिए विधान बतलाया गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति²⁵ में भी गणपति पूजा का विस्तृत विधान है, किन्तु उस समय एक अनिष्टकारी देवता के रूप में इनकी मान्यता थी, जिससे पीछा छुड़ाना उनकी पूजा का प्रधान ध्येय था। गणपति को शीघ्र ही विघ्नेश अर्थात् अनेक प्रकार की विपत्तियों को दूर करने वाला माना जाने लगा। सभी धार्मिक एवं महत्वपूर्ण कार्यों के आरम्भ में गणपति की पूजा की जाने लगी। एक सिद्धि दाता के रूप में वे सर्प मान्य हो गये।

छठी-सातवीं सदी ई. के लगभग गाणपत्य सम्प्रदाय के अस्तित्व में आने के बाद गणपति-स्वरूप के विभिन्न पक्ष अस्तित्व में आये। उनके गजमुख होने की कल्पना तो छठी सदी ई. पू. के लगभग ही कर ली गई थी, किन्तु इस समय इससे सम्बन्धित अनेक कथानाकें का भी जन्म हुआ। शिवपुराण की कथा के अनुसार स्नान के लिए जाती हुई पार्वती ने अपने शरीर के मैल से एक मानव आकृति को निर्मित कर द्वारपाल के रूप में नियुक्त की। भगवान शिव के आने पर द्वार पर ही गणेश के द्वारा उन्हें रोक दिये जाने पर शिव के गणों के साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में विष्णु आदि देवताओं ने भी भग्न लिया, किन्तु वह अपराजित रहे। फलतः शिव ने संघर्ष कर उनके सिर का विच्छेदन कर दिया। जब स्नान कर पार्वती आयी तो अपने द्वारा नियुक्त द्वारपाल के रूप में नियुक्त की। भगवान शिव के आने पर द्वार पर ही गणेश के द्वारा उन्हें रोक दिये जाने पर शिव के गणों के

साथ उनका भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में विष्णु आदि देवताओं ने भी भाग लिया, किन्तु वह अपराजित रहे। फलतः शिव ने संघर्ष कर उनके सिर का विच्छेदन कर दिया। जब स्नान कर पार्वती आयी तो अपने द्वारा नियुक्त द्वारपाल को मृत पाकर अत्यन्त क्रोधित होकर संघर्ष के लिए तत्पर हो गई। अन्य मातृकाएं भी उनके सहयोग के लिए अपने आयुधों सहित उपस्थित हुईं फलतः देवताओं और देवियों के इस भयंकर संघर्ष में देवताओं की पराजय हुई। फिर भी पार्वती का क्रोध शान्त नहीं हुआ। अन्ततः विष्णु के द्वारा गणेश को पुनः जीवित किये जाने के आश्वासन पर पार्वती का क्रोध जाता रहा। शिव ने समस्त देवों तथा अपने गणों को यह आदेश दिया कि वे उत्तर-दिशा की ओर जायें और जो भी पहला प्राणी मिले उसका सिर गणेश के धड़ के साथ जोड़ दिया जाय। समस्त देवों तथा गणों के द्वारा उत्तर-दिशा में जाने पर सर्वप्रथम एकदन्त युक्त गज दिखलायी पड़, जिसका सिर काट कर लाया गया और गणेश के धड़ के साथ जोड़कर उन्हें जीवन प्रदान किया गया। चूंकि पार्वती के शरीर के मैल से उनका निर्माण हुआ था, फलतः वे पार्वती के पुत्र के रूप में स्वीकृत हुए। शिव ने उन्हें अपने गणों का नायक बना दिया।

गणेश के एकदन्ती होने से सम्बन्धित एक प्रसिद्ध कथानक का उल्लेख ब्रह्माण्ड पुराण²⁶ में किया गया है। जिसके अनुसार एक बार क्षत्रियों का संहार कर परशुराम शिव के दर्शन के लिए कैलाश पर्वत पर गये। उस समय शिव और पार्वती वार्तालाप कर रहे थे और किसी भी प्रवेश प्रतिबन्धित था। द्वार पर परशुराम के आते ही गणेश ने उन्हें आगे जाने से रोक दिया, फलतः परशुराम और गणेश में संघर्ष हो गया। परशुराम ने अपने परशु से प्रहार कर गणेश का एक दांत तोड़ दिया। तब से गणेश एकदन्ती हो गये।

गणेश के जन्म के सम्बन्ध में वराह पुराण के बहुप्रचलित कथानक के अनुसार देवगण तथा ऋषिगण जब भी कोई सत् कार्य करते थे तो उनमें अनेक विघ्न उत्पन्न हो जाया करता था, इसके विपरीत असत् कार्यों का सम्पादन निर्विघ्न होता था। फलतः देवताओं ने मिलकर इसे दूर करने के लिए महादेव से प्रार्थना की। महादेव ने देवताओं की इस समस्या को सुनकर उमा की तरफ देखकर भीषण अदृष्ट किया। उनके अट्टाहास से परश्रेष्ठी गुणों से युक्त एक सुन्दर मनमोहक कुमार का जन्म हुआ, जिसके

अद्भुत रूप को निर्मिमेष चक्षु से उमा देखने लगी। उमा के इस चंचकल भाव देखकर शिव कुपित होकर गणेश को यह श्राप दिया कि उसका मुख गज का, उदर बड़ा तथा उसका वाहन मूषक होगा। ब्रह्मा में उन्हें सभी विनायकों का अधिपति नियुक्त किया और शिव ने उन्हें विघ्नकर, गजास्थ, गणेश, भवपुत्र आदि संज्ञा प्रदान की, साथ ही यह भी कहा कि देवताओं में, यज्ञों में तथा अन्य धार्मिक कार्यों में उनकी पूजा सर्वप्रथम होगी।²⁷ यदि ऐसा नहीं होगा तो कार्य-सिद्धि का नाश होगा। गणेश का जन्म तथा उनका नामकरण चतुर्थी के दिन हुआ था। अतः उसी दिन से उनकी विधिवत पूजा प्रारम्भ की।

गणेश की सिद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियों का भी उल्लेख किया गया है। प्रतिमाओं में भी गणेश को पत्नी के साथ दर्शाया गया है। उनके विवाह से सम्बन्धित प्रसिद्ध कथानक का उल्लेख शिवपुराण में हुआ है। जिसके अनुसार स्कन्द और गणेश के विवाह योग्य होने पर शिव ने यह निश्चय किया कि उन दोनों में से जो सबसे पहले पृथ्वी की परिक्रमा पूर्ण कर लेगा उसका विवाह सबसे पहले होगा। स्कन्द ने अपने वाहन मयूर पर सवार होकर पृथ्वी की परिक्रमा के लिए प्रस्थान किया, किन्तु गणेश ने अपने वाहन मूषक पर सवार होकर अपने माता-पिता की सात बार प्रदक्षिणा की और उन्हें यह प्रमाण देकर सन्तुष्ट कर दिया कि माता-पिता की सात बार प्रदक्षिणा करने पर पृथ्वी-परिक्रमा का फल प्राप्त होता है। फलतः शिव और पार्वती ने सिद्धि और बुद्धि नामक सुन्दर कुमारियों से उनका विवाह सम्पन्न किया।²⁸

गुप्तकाल के अन्तिम चरण तक आते-आते गणेश के सम्पूर्ण स्वरूप तथा व्यक्तित्व का स्पष्ट विकास हो चुका था। इस रूप में उन्हें लम्बोदर, एकदन्ती, शूर्पकर्ण, गजमुख, वक्रतुण्ड, विघ्नेश्वर, सिद्धिदायक के रूप में मान्यता प्राप्त हो गयी थी, और इन विशेषताओं से संबंधित अनेक कथाएं अस्तित्व में आईं। उनके शूर्पकर्ण होने से सम्बन्धित एक कथा के अनुसार एक बार ऋषियों ने अग्नि को बुझाकर लुप्त हो जाने का श्राप दिया, फलतः अग्नि का समस्त तेज समाप्त हो गया, किन्तु गणेश ने अग्नि पर दया कर अपने शूर्प सदृश कानों से हवा कर अग्नि को पुनः जीवन प्रदान किया।²⁹ तभी से गणेश को शूर्पकर्ण के रूप में मान्यता मिली। कुछ शास्त्रों में उनके वाहन तथा आगमों में गणपति से सम्बन्धित कथानकों का उल्लेख हुआ है।

गणपति प्रतिमा-विधान

पुराणों, आगमों तथा शिल्प ग्रन्थों में गणपति-प्रतिमा को अनेक रूपों में प्रदर्शित करने का विधान निश्चित किया गया है। गणपति-प्रतिमा-विधान का प्राचीनतम विवरण हमें वराहमिहिर की वृहत्संहिता में प्राप्त होता है। जिसके अनुसार एकदन्ती गजमुख और लम्बोदर गणपति को परशु तथा कन्दमूलधारी प्रदर्शित करना चाहिए। वृहत्संहिता³⁰ में वर्णित गणपति प्रतिमा-लक्षण के विवरण को विचारकों ने क्षेपक स्वीकार किया है, फिर भी गुप्तकाल के आरम्भिक चरण में गणपति की प्रतिमाओं का निर्माण प्रतिमाशास्त्रीय आधार होने लगा था।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण³¹ में अपने एक पैर को पाद पीठ पर ओर दूसरे को आसन पर रखे हुए गजमुख और चतुर्भुज गणपति को अपने दाहिने हाथों में त्रिशूल और अक्षमाला तथा बांये हाथों में परशु और मोदक से भरा पात्र लिए हुए वर्णित किया गया है। इस पुराण के अनुसार वे लम्बोदर और शूर्पकर्ण हों तथा सर्प यज्ञोपवीत और व्याघ्र-चर्म का वस्त्र धारण किये हुए हों, उनके बायीं ओर के दांत का प्रदर्शन न हो।

मत्स्य पुराण³² में गणपति प्रतिमा-विधान के अन्तर्गत कुछ अन्य तत्वों को भी समाविष्ट किया गया है। इस पुराण में वर्णित विवरण के अनुसार वे चतुर्भुजी रूप में अपने दांये हाथों में स्वदन्त और कमल तथा बांये हाथ में मोदक और परशु धारण किये हुए हों। उनका मुख गजमुख हों, वे लम्बोदर, शूर्पकर्ण, विशालतुण्ड, एकदन्ती, सर्प-यज्ञोपवीतधारी तथा त्रिनेत्र युक्त हों। उनके साथ उनका वाहन मूषक तथा ऋद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियां हों, उनके कन्धे और हाथ पुष्ट हों तथा मुख नीचे की तरफ झुका हुआ हो।

अग्निपुराण³³ के विवरण के अनुसार गजमुख, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, चतुर्भुजी गणपति के हाथों में स्वदन्त परशु, कमल और मोदक होना चाहिए। अपराजित पृच्छा में भी गजमुख, लम्बोदर और चतुर्भुजी गणपति को अपने दाहिने हाथों में स्वदन्त, परशु और बांये हाथ में कमल और मोदक लिए हुए वर्णित किया गया है। रूपमण्डन में भी ठीक इस प्रकार का विवरण प्राप्त होता है। दक्षिण भारतीय ग्रन्थ

अंशुमद्भेदागम³⁴ और सुप्रभेदागम में भी गणपति प्रतिमा-विधान का उल्लेख हुआ है, जो पौराणिक विवरण के ही समान है।

परवर्ती लक्षण गन्थों में गणपति के अन्य अनेक प्रतिमा प्रकारों का भी उल्लेख किया गया है, जिन्हें विविध रूपों में दिखाने का विधान है। इन प्रतिमा प्रकारों में हेरम्ब गणेश, क्षिप्रगणेश, बालगणेश, गजानन, वक्रतुण्ड गणेश, उच्छिष्ट गणेश, उन्मत गणेश, नृत गणपति, रात्रिगणेश, नागेश्वर, बीजगणेश, शक्तिगणेश आदि प्रमुख हैं।

हेरम्ब गणेश- हेरम्ब गणेश की दस भुजाएं, पांच मुख और तीन नेत्र होते हैं। उनका वाहन मूषक होता है। उनके दाहिनी तरफ की पांच भुजाओं में से तीन में अंकुश, दण्ड तथा परशु होता है, शेष दो हाथ अभय तथा वरद मुद्रा में होते हैं। उनके बांयी तरफ के पांच हाथों में कपाल, धनुष, माला, पाश तथा गदा होता है। शिल्परत्न में श्वेतवर्णी हेरम्ब गणेश को द्वादशमुखी वर्णित किया गया है। उनके दसों भुजाओं में त्रिशूल, अंकुश, मुद्गर, माला, धनुष, परशु, दण्ड और मोदक होता है और शेष दो भुजाएं वरद तथा अभय मुद्रा में होती हैं।

क्षिप्र गणेश- क्षिप्र गणेश³⁶ के रूप में देवता चन्द्रकानित से युक्त, रक्तवर्णी त्रिनेत्री तथा चतुर्भुजी होते हैं। उनके हाथों में पाश, अंकुश, कल्पवृक्ष की शाखा, स्वर्ण-कुम्भ या स्वदन्त होता है। क्षिप्र-गणेश को मुकुट, हार आदि आभूषणों से युक्त षड्भुजी रूप में दिखाने का विधान है। इस रूप में उनके हाथों में पाश, अंकुश, कल्पलता, स्वदन्त, सर्प और बीजक होते हैं।

गजानन- गजानन रूप में रक्तावर्णी, हस्तिमुख वाले चतुर्भुजी गणेश के हाथों में अंकुश, परशु, रत्न-कुम्भ और स्वदन्त दिखाया जाता है।

वक्रतुण्ड गणेश - वक्रतुण्ड गणेश का पेट लम्बा, शूर्पकर्ण, तीन नेत्र और चार भुजाएं होती हैं। उनके दो हाथों में पाश तथा अंकुश होता है, शेष दो हाथ वरद तथा अभय-मुद्रा में होते हैं। उनके दोनों पार्श्व में उनकी पत्नियाँ ऋद्धि और बुद्धि का प्रदर्शन होता है।

उच्छिष्ट गणेश - उच्छिष्ट गणेश के रूप में त्रिनेत्री, सर्प-यज्ञोपवीतधारी, चतुर्भुजी गणेश को मूषक पर बैठे प्रदर्शित किया जाता है। उनके चारों हाथों में टूटा हुआ दांत, माला, परशु और मोदक होता है। इस रूप में उन्हें कमल पर बैठे हुए नग्न रूप में भी दिखाया जाता है और उनके हाथों में बाण, धनुष, पाश और अंकुश होता है।³⁷

रात्रि-गणेश - रात्रिगणेश को पीतवर्णी, त्रिनेत्र और चतुर्भुजी रूप में पाश, अंकुश, मोदक और स्वदन्त धारण किये हुए स्वर्ण आसन पर बैठे प्रदर्शित किया जाता है।

बीज-गणेश- शिल्परत्न के अनुसार बीज-गणेश का मुख गज का तथा उदर बड़ा होता है उसकी चार भुजाओं में माला, परशु, दण्ड और मोदक स्थित होता है।

शक्ति गणेश- शक्ति गणेश के रूप में देवता को विभिन्न रूपों में दिखाने का विधान निश्चित किया गया है। लक्ष्मी गणपति के रूप में उनके शरीर का वर्ण स्वर्ण सदृश्य होता है। कमल से विभूषित और स्वर्णाभूषणों से सुशोभित उनके दोनों पार्श्व में सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों पत्नियों को प्रदर्शित किया जाता है। उनके तीन नेत्र और चार भुजाएं होती हैं। चारों भुजाओं में से दो में स्वदन्त तथा चक्र और शेष दो हाथ आीय और वरद मुद्रा में होते हैं। उनके सूंड़ में मणियुक्त कुम्भ का प्रदर्शन होता है। उनका वाहन मूषक होता है।

नृतगणपति - नृतगणपति के रूप में देवता को अष्टभुजी रूप में प्रदर्शित किया जाता है। उनके एक हाथ को नृत्य-मुद्रा के विभिन्न रूपों में दिखाया जाता है और सात में पाश, अंकुश, मोदक, परशु, स्वदन्त, वलय या अंगुलीय होता है।

गणपति प्रतिमा निर्माण

गणपति की प्रतिमाओं का निर्माण ई० पू० द्वितीय सदी से होने लगा था। यह चित्रण कुषाण कालीन मथुरा कला और अमरावती की कला में हुआ है। किन्तु इन आरम्भिक युगीन गणपति प्रतिमाओं के निर्माण में यक्षों और नागों की विशिष्टताएं परिलक्षित होती हैं। कुमारस्वामी के विचार से तो आरम्भ में गणपति को यक्ष के रूप में ही मान्यता प्राप्त थी और गणपति निःसन्देह एक यक्ष है। गजानन यक्ष का

प्राचीनतम अंकन अमरावती में द्रष्टव्य है। वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार भी आरम्भिक युगीन गणपति प्रतिमाएं यक्ष प्रतिमाओं के समान ही निर्मित हुई हैं।³⁹

गुप्त काल के आरम्भिक चरण में गणपति की प्रतिमाएं निर्विवाद रूप से निर्मित होने लगी थी। जिनको देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश रूप में उनके निर्माण का प्रतिमाशास्त्रीय आधार था। इस काल की मथुरा संग्रहालय में सुरक्षित सुन्दर प्रतिमाओं में गजमुख, लम्बोदर, एकदन्ती, द्विभुजी गणेश को बांये हाथ में रखे हुए मोदक को अपने सूंड से स्पर्श करते हुए प्रदर्शित किया गया है। छठवीं सदी ई. की बिहार के शाहाबाद जनपद से प्राप्त और पटना संग्रहालय में सुरक्षित गणपति प्रतिमा में देवता को पद्मासन में बैठे हुए प्रदर्शित किया गया है। उनका सूंड बांये हाथ में रखे हुए मोदक की तरफ आकर्ष ढंग से मुड़ा हुआ है। कानपुर जिले में स्थित गुप्तकालीन भीतर गांव के मन्दिर⁴⁰ से प्राप्त मृण्मलक में चतुर्भुजी, गजमुख गणपति को भी बांये हाथ में स्थित मोदक-पात्र को अपने सूंड से पकड़ते हुए दिखाया गया है। इसी काल की भूमरा से प्राप्त प्रतिमा में गणपति को द्विभुजी रूप में एक पीठिका पर आसीन दिखया गया है। उनकी दोनों भुजाएं खण्डित हो गई हैं। भूमरा से ही प्राप्त एक दूसरी प्रतिमा में गणेश को अपनी शक्ति विघ्नेश्वरी के साथ आलिंगन मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है। इसी प्रकार उदयगिरी गुफा में द्विभुज गणपति को एक उर्ध्व पीठिका पर अर्धपर्याकासन मुद्रा में बैठे दिखाया गया है।⁴¹ उनका सूंड उनके बांये हाथ में रखे हुए मोदक-पात्र की तरफ मुड़ा हुआ है। गुप्तकाल के अंतिम चरण में गणपति प्रतिमाओं को नृत्य आदि विभिन्न रूपों में प्रदर्शित किया जाने लगा। मथुरा की कला में निर्मित इस समय की एक गणपति प्रतिमा को कमल पुष्प के ऊपर नृत्यमुद्रा में गणपति को प्रदर्शित किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ एवं पाद टिप्पणियां -

1. गणानां त्वा गणपति हवामहे, ऋ0 वेद, 2, 23, 1
2. आई. एच. क्यू, वॉल्यूम, 31, पृ0 14
3. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1, 271
4. ब्रह्माण्ड पुराण, 41
5. वराह पुराण, 23, 38
6. शिवपुराण, रूद्र संहिता कुमार खण्ड, 33, 1-53
7. वृहत्संहिता, 58
8. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 71, 13-16
9. मत्स्य पुराण, 260, 52-55
10. अग्नि पुराण, 50, 23
11. अपराजितपृच्छा, 212, 35
12. रूपमण्डन, 5, 15
13. बनर्जी महोदय के अनुसार उन्मत्त गणेश, उच्छिष्टगणेश, आदि का सम्बन्ध वामाचार तांत्रिक उपासना से है। डी. एच. आई. पृ0 358
14. मत्स्य पुराण, 260, 55
15. अग्रवाल, वासुदेव शरण, मथुरा कला, पृ0 73, भारतीय कला, पृ0 271
16. मथुरा म्यूजियम, सं0 792
17. पटना म्यूजियम, सं0 4449
18. बनर्जी, आर. डी., एम. ए. एस. आई., सं0 16
19. अग्रवाल, वासुदेव शरण, मथुराकला, पृ0 74
20. वही, पृ0 361
21. पटना म्यूजियम, सं0 10601
22. अवस्थी, रामाश्रय, खजुराहो की देव प्रतिमाएं, पृ0 41-60

- 23.शास्त्री, एच. के., साउथ इण्डियन इमेजेस ऑफ गॉड एण्ड गॉड्स, पृ0 173
- 24.मजूमदार, आर. सी., चम्पा, पृ0 191
- 25.अग्रवाल, वी. एस., इण्डियन आर्ट, पृ0 49
- 26.महाभारत वन पर्व, 232, 3-9
- 27.स्कन्द : शक्तिं समादाय तस्यौ मेरुरिवाचलः महाभारत, आदि प0, 226, 36
- 28.महाभाष्य, 5,3,99
- 29.मत्स्य पुराण, 160, 1-32
- 30.अग्रवाल, वासुदेव, मथुरा कला, पृ0 74-76
- 31.वही, पृ0 270
- 32.बृहत्संहिता, 57
- 33.मत्स्य पुराण, 260
- 34.समरांगण सूत्र, 77, 23-25
- 35.महाभारत, सभा पर्व, 32, 4-5
- 36.स्मिथ, वी. ए., केटेलॉग ऑफ कौन्स इन द इण्डियन म्यूजियम, वॉल्यूम 1, पृ0 151
- 37.कॉपर्स इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम, पृ0 42
- 38.अग्रवाल, वी. एस., भारतीय कला पृ0 65
- 39.वही, 66-68
40. महाभाष्य, 6,3,26
- 41.रुद्र संहिता, कुमारखण्ड 160-32

देवी प्रतिमाए

ਭਾਸ਼ਨੀਰ ਚਿੰਤ

देवी मूर्तियां

शक्ति पूजा का न केवल भारत में ही बल्कि विश्व के सभी प्राचीन सभ्यताओं वाले देशों में महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी पूजा के प्रमाण सीरिया, एशिया माइनर, मिस्र, पेलस्टीन, साइप्रस आदि सभ्यताओं में मिले हैं सिंधु घाटी सभ्यता में भी मातृ पूजा का समावेश था। सर जान मार्शल के अनुसार यहां की मातृ-पूजा-पद्धति में मिस्र की मातृका पूजा पद्धति का प्रभाव था। किन्तु सिंधु घाटी सभ्यता में मातृका पूजन की परम्परा अपेक्षाकृत आर्य सभ्यताओं से अधिक व्यापक थी। यहां अनेकों मुहरों पर मृणमयी मातृदेवियों की मूर्तियां मिली हैं। इनकी संख्यात्मक विविधता को देखकर तो ऐसा लगता है कि जैसे मानों सिंधु सभ्यता में शक्ति पूजा ही प्रमुख पूजा रही हो।

पौराणिक साहित्य में शक्ति की विस्तृत विवेचना की गई है तथा विभिन्न पुराणों में मुख्यतया मार्कण्डेय, विष्णु, मत्स्य आदि पुराणों और देवी भागवत में देवी के विविध रूप, उनके चरित तथा स्तुति और जूजा सम्बन्धी संदर्भ मिलते हैं। पुराणों में शक्ति के निवास स्थान का भी वर्णन हुआ है। मत्स्य पुराण में उल्लेख है कि ब्रह्मा के आदेश से तारकासुर वध के समय देवी ने विन्ध्याचल को अपना आवास स्थल बनाया था।¹ विन्ध्याचल आज भी शक्ति का आवास माना जाता है जहां भक्त जन अपार संख्या में उपस्थित होकर उनकी स्तुति करते हैं। वायु पुराण में भी इन्हें विन्ध्यनिलया नाम दिया गया है।² पुराणों में शक्ति के वाहन की चर्चा है। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि ब्रह्मा के आदेश से देवी ने सिंह को अपना वाहन बनाया।³ वायु पुराण में भी इन्हें सिंहवाहिनी कहा गया है।⁴ शक्ति की उत्पत्ति संबंधी विभिन्न विचार पुराणों में मिलते हैं। विष्णु पुराण के अनुसार विष्णु ने देवकी के गर्भ में से उत्पन्न होने का जब निश्चय किया तो उसी समय उन्होंने योगनिद्रा में यशोदा के गर्भ में देवी को स्थित होने का आदेश दिया। उनकी उत्पत्ति का मुख्य उद्देश्य दैत्यों का नाश करना बताया गया है।⁵ वायु पुराण के अनुसार जिस कन्या को कंस ने छोड़ दिया था वह वस्तुतः एकादशी शक्ति थी जिनका जन्म कृष्ण की रक्षाके लिए हुआ था। इनकी यदुवंशी प्रसन्नता से पूजा करते हैं।⁶ मत्स्य पुराण के अनुसार देवी का अवतार ब्रह्मा से बताया गया है और कहा गया है कि वे उमा के शरीर से कृतकृत्या हुई थी और उन्हें सुर कार्य को पूर्ण करने का आदेश दिया गया।⁷ वायु पुराण में महाकाली को उमा के शरीर के

भूतों के साथ उत्पन्न माना गया है।⁹ दूसरी जगह चर्चा है कि जिस समय दक्ष के यज्ञ को विनाश करने के लिए यज्ञ भूमि में शिव गण गये हुए थे उस समय उमा के क्रोध से उत्पन्न हुई महाकाली भी थी।⁹ ब्रह्माण्ड पुराण के अनुसार शक्ति ब्रह्मा के ध्यानयोग से उत्पन्न हुई थी।¹⁰ पुराण में भी शक्ति को इन्द्र, विष्णु, शिव, ब्रह्मा आदि से सम्बन्धित बताया गया है। ब्रह्माण्ड पुराण और वायु पुराण में शक्ति को माहेन्द्री अर्थात् इन्द्र की पुत्री कहा गया है। इसके साथ ही साथ इन्हें इन्द्र दुहिता भी कहा गया है। विष्णु पुराण में इससे भिन्न रूप है। यहां देवी को इन्द्र की भगिनी कहा गया है। इस पुराण के अनुसार जिस समय देवी यशोदा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी तो वे वैष्णवी महामाया थी। मत्स्य पुराण के अनुसार शुष्करेवती नामक देवी विष्णु के शरीर से उत्पन्न हुई थी। पुराणादि के साक्ष्यों से ज्ञात विविध देवियों का उल्लेख तथा उनकी मूर्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत है।

लक्ष्मी

लक्ष्मी भृगु की पुत्री और भगवान विष्णु की पत्नी हैं।¹¹ ये विष्णु की ही तरह सर्वव्यापक है। भगवान जगत के स्रष्टा हैं तो लक्ष्मी सृष्टि है। ये देवों और असुरों के बीच समुद्रमन्थन करते यम हाथों में कमलपुष्प धारण किये क्षीर सागर से उत्पन्न हुई थी। तत्पश्चात् इन्हें अपने जल से गंगा आदि नदियों ने तथा दिग्गजों ने स्वर्ण कलशों से निर्मल जल प्लावित कर सर्वलोक महेश्वरी लक्ष्मी देवी को स्नान कराया। क्षीर सागर सागर ने मूर्तिवान होकर उन्हें विकसित कमल पुष्पों की माला दी तथा विश्वकर्मा ने उनके अंग प्रत्यंग के विविध आभूषण पहलाये और सभी आभूषणों से सुसज्जित होकर लक्ष्मी विष्णु के वक्षस्थल में विराजमान हुई हैं।¹¹

गुप्तकाल में लक्ष्मी प्रतिमा का अत्यधिक महत्व था। इनकी प्रतिमा निर्माण के विधान में शास्त्रीय मान्यताओं का भी ध्यान रखा गया है। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में लक्ष्मी प्रतिमा को दो भुजी और चतुर्भुजी दोनों रूपों में ही बनाने का विधान बताया गया है। इन दोनों रूपों में भी दो भेद जगतजननी तथा विष्णु प्रिया के निर्माण विधान के समय हो जाते हैं। इनके अनुसार जब वे हरि के समीप होती हैं तो उनका स्वरूप दो भुजी दिव्यरूपा, हाथ में कमल धारण किये हुए सभी आभूषणों से सुशोभित, गौरवर्ण, श्वेत वस्त्र पहने तथा अप्रतिम रूप सम्पन्न होती हैं। पर जब उनकी स्वतन्त्र प्रतिमा होती है

तो वे सिंहसन पर चार भुजायुक्त होती है। उनके सिंहासन पर सुन्दर अष्टदल कमल पूर्ण रूप से खिला रहता है। कर्णिका में बैठी हुई गरुड़ के साथ देवी का निर्माण किया जाता है और उनके हाथ में बड़े नाल युक्त सुन्दर कमल धारण कराये जाते हैं। दाहिने हाथ में कैयूर तथा बायें हाथ में सुन्दर अमृत का घट। शेष दोनों हाथों को वेल और शंख से विभूषित किया जाता है। पीछे दो हाथियों को अपनी सूंड में घंटों को लिए हुए देवी को स्नान कराना चाहिए। देवी के मस्त पर सुन्दर कमल बनाना चाहिए। इसी तरह से मत्स्य पुराण में उन्हें नवयोवन सम्पन्ना, उन्नत कपोल, रक्तओष्ठ, तिरछी भोंहे, पौने एवं उन्नत स्तनों वाली मणि जडित कुण्डलों से विभूषित करना चाहिए उनका मुख मण्डल अत्यन्त सुन्दर तथा सिर केश विन्यास से विभूषित हो तथा पद्म स्वस्तिक और शंखों से युक्त कुण्डल एवं एकावली से सुशोभित कंकुच शरीर में धारण किये हुए दोनों स्तनों पर हार की लड़ियां हों। बायें हाथ में कमल तथा दाहिने में श्रीफल होना चाहिए। उनको तप्त सुवर्ण के समान गौरवर्ण वाली अनेको आभूषणों से विभूषित सुन्दर वस्त्रों से युक्त करना चाहिए। पद्म सिंहासन पर विराजमान निर्मित हों। उनके पार्श्व में चामर-धारिणी अन्य स्त्रियों को निर्मित करें। दो हाथी सूंड में घट लिए हुए स्नान करा रहे हों तथा अन्य दो हाथी उन हाथियों पर झंझरों से जल गिर रहे हों। गंधर्व, यक्ष तथा लोकपालों से स्तुति की जाती हुई लक्ष्मी प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए।¹²

भूदेवी

भूदेवी अर्थात् पृथ्वी, लक्ष्मी की ही एक अनुकृति या रूप है। इनकी प्रतिमा निर्माण के विधान को विष्णुधर्मोत्तर पुराण में देखा जा सकता है। पृथ्वी को श्वेत वर्ण एवं दिव्य आभूषणों से सुसज्जित चार भुजाओं सहित सुन्दर शरीर वाली और चन्द्रमा की किरणों के समान उज्ज्वल वस्त्र धारण किये हुए निर्मित करना चाहिए। उसके हाथ में रत्नपात्र, कास्यपात्र, औषधि युक्त पात्र और कमल बनाना चाहिए। वैसे उन्हें चार दिग्नागों की पीठ पर स्थिर करना चाहिए। सब औषधियों से युक्त देवी गौरवर्ण वाली होती है। उनका श्वेत वस्त्र धर्म है और हाथ में स्थित कमल धन है।¹³ गुप्तकालीन भू देवी की कोई भी स्वतन्त्र प्रतिमा देखने को नहीं मिलती है। लक्ष्मी विष्णु की माया है। उनका संबंध विष्णु से अटूट है। लक्ष्मी को विष्णु पुराण में भूमि भी कहा गया है। अतः भू-देवी की जो भी प्रतिमाएं प्राप्त

होती हैं वे विष्णु के वराह अवतार से ही सम्बन्धित हैं। इस तरह की प्रतिमाएं कई जगहों से प्राप्त हुई हैं जिनकी चर्चा विष्णु के वराहावतर के साथ की जाती है। प्रसिद्ध उदयगिरी के विशाल वराह के दांत पर स्थित है। जिन्हें वराहरूपी विष्णु बचा रहे हैं। यहां भू-देवी को नीचे से निकाल रहे कमल पर पैर रखे दिखाया गया है। गले में एका ली, पैरा में नूपुर स्पष्ट है। धोती पहनी है। गर्दन के ऊपर के भाग टूट गये हैं। फिर भी यह भू-देवी की एक सुन्दर प्रतिमा है। भू-देवी की अन्य प्रतिमाओं की अपेक्षा यह अंशतः अधिक सुरक्षित है। सिर के सुन्दर केश विन्यास तो देखते ही बनता है। वह अतीव सुन्दर है। भू-देवी सभी आभूषणों से सुसज्जित है। वे एक पाद-पीठ पर अपने दाहिने पैर को लटकाये हुए बैठी हैं। बांयी भुजा और पैर टूटे हैं। इसी तरह भू-देवी की प्रतिमा ऐरण, वदोह आदि स्थानों की वराह प्रतिमाओं के साथ देखने को मिलती है।

सरस्वती

हिन्दू धर्म में सरस्वती का बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी प्राचीनता ऋग्वेद से पाई जाती है। यहां ये नदी की देवी कहीं गई हैं। ये धनदात्री और अन्नदात्री के रूप में भी वर्णित हैं। ये विविध देवताओं की संबंधी भी मानी गई हैं। उत्तर वैदिक कालीन स्वरूप में भी वे नदी के साथ ही साथ वाक् की अधिष्ठात्री कही गई हैं। इनके तट पर वैदिक आर्यों ने वैदिक मनों की रचना की। रामायण में भी सरस्वती नदी रूप में पूजित हैं पर यहां वे जिह्वावासिनी भी कही गई हैं। ये वाणी की देवी हैं। महाभारत में भी नदी रूप एवं वाणी की देवी के रूप में इनकी चर्चा की गई है। पुराण में इन्हें ब्रह्मा की पुत्री, पत्नी दोनों माना गया है। इसके साथ ही साथ ब्रह्मा के मुख में वास करती भी कही गई हैं। अतः ये विद्या और संगीत की देवी रूप में हाथों में पुस्तक एवं वीणा युक्त प्रदर्शित हुईं। इसके साथ ही साथ पुराणों में लक्ष्मी के रूप का भी वर्णन मिलता है। वायु पुराण में सरस्वती को चार हाथों वाली चार पैरों वाली, चार मुखों वाली और चार आंखों वाली देवी का वर्णन है। मत्स्य पुराण में वीणा, अक्षमाला, कमण्डल और पुस्तक धारण करने का उल्लेख हुआ। इसके साथ ही यहां यह भी उल्लेख है और इनको अपने हाथों में कमल धारण किये रहना चाहिए। विष्णुधर्मोत्तर में सरस्वती को सभी आभूषणों से विभूषित चार भुजाओं सहित खड़ी हुई बनाना चाहिए। उनके दाहिने हाथों में पुस्तक और

अक्षमाला तथा बांये में कमण्डल और वीणा बनाना चाहिए। सरस्वती का उल्लेख जैन और बौद्ध ग्रन्थों में भी मिलता है। सरस्वती प्रतिमा का प्राचीनतम रूप भरहुत से माना जा सकता है क्योंकि यहां से वीणा युक्त एक स्त्री की प्रतिमा प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा बहुत ही खण्डित है। देवी कमल के फूल पर खड़ी हैं। देवी आभूषणों से सुसज्जित दोनों हाथों में वीणा वादन करती हुई उत्कीर्ण हैं। पर इसे निश्चित रूप से सरस्वती कहना कठिन है।

पार्वती

पार्वती शिव की शक्ति है। गुप्तकाल में पार्वती की प्रतिमाओं की अधिकता है। इनको शिव के साथ नन्दी पर सवार, देवगढ़ में शेषशायी विष्णु की प्रतिमा के ऊपर के फलक पर प्रस्तुत किया गया है। इसमें पार्वती शिव के वाम भाग में बैठी हैं। ये किरीट सहित सभी आभूषणों से सुसज्जित अपने दाहिने हाथ को शिव के कन्धे पर रखी हुई बैठी हैं। उनका बांया हाथ अपने घुटने के मोड़ पर रखी हैं। इसी तरह मथुरा के कैलास पर्वत पर पार्वती का चित्रण शिव के साथ बहुत ही सजीव है जिसका पीछे चित्रण हुआ है। पार्वती शिव के हर गौरी प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण है। कोशाम की मृग प्रतिमाओं में गौर का रूप बहुत ही निखरा हुआ प्रस्तुत हुआ है। इसमें सिर के मणियुक्त अलंकृत किरीट, उनके विविध आभूषण, साड़ी का पहनावा, सब मिलाकर इसे एक श्रेष्ठ कलाकृति का दर्जा देना चाहिए।

पार्वती की प्रतिमा का चित्रण यदा कदा गणेश और स्कन्द की माता के रूप में भी प्राप्त होता है। पार्वती की गणेश के साथ नृत्य करते हुए प्रतिमा बहुत ही सुन्दर है। यह प्रतिमा तीनलाई से प्राप्त हुई है जो आजकल बड़ौदा संग्रहालय में है। इसमें पार्वती अपने दाहिने हाथ को जंघा पर रखी हुई हैं। उनके बायें हाथ में लम्बा त्रिशूल है, यहां छोटे आकार में गणेश के साथ उनका वाहन भी उत्कीर्ण हुआ है। यह प्रतिमा 6वीं सदी की है। इसी तरह पार्वती की स्कन्द के साथ स्कन्द माता के रूप में गुजरात से कई प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। तानेश्वर महादेव की दो स्कन्दमाता प्रतिमाओं में शैलीगत अन्तर है। एक प्रतिमा में पार्वती शिशु कार्तिकेय को बांये हाथ से पकड़े और दायें हाथ पर स्थिर किये हुए हैं। शिशु भी खड़ा है। पार्वती भावपूर्ण मुद्रा में नीची निगाह किये अपने पैरों की ओर ताक रही हैं। दूसरी

प्रतिमा में स्कन्द माता दाहिने हाथ से शिशु को पकड़े हुए हैं जो उसी पीठिका पर स्थिर मचलता हुआ खड़ा है। जिस पर स्कन्द माता खड़ी हैं। माता शिशु को प्रसन्न मुद्रा में देख रही है।¹⁴

पार्वती की चतुर्भुजी स्थानक प्रतिमा भी द्रष्टव्य है। इस तरह की एक प्रतिमा दिलवाड़ा, आवू से प्राप्त है। पार्वती के सिर पर भारी जूड़ा है। ये सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं। लम्बी माला भी धारण की हुई है। नीचे दोनों ओर सिंह बैठे हैं। उनके पीछे के दाहिने हाथ में लम्बा त्रिशूल है तथा सामने प्रज्ञान मुद्रा में हैं। पीछे के बायें हाथ में कमल है। एवं सामने का कटिहस्त मुद्रा में है। मुखाकृति बहुत ही क्षतिग्रस्त है। इस प्रतिमा का समय 6 वीं सदी है। भद्रकाली पार्वती का ही अभिचारी रूप है। विष्णुधर्मोत्तर के अनुसार भद्रकाली को अट्टारह भुजाओं वाली निर्मित करना चाहिए। वे मनोहर रूप वाली होती हैं। वे चार सिंहों से युक्त रथ पर सवार होती हैं। अक्षमाला, त्रिशूल, खड्ग, चर्म, धनुष, बाण, शंख, पद्म, सुत्रा, वेदी, कमण्डल, दण्ड, शक्ति, कृष्णचर्म और अग्निभद्रकाली के हाथों में रहता है। किन्तु गुप्तकाल में इस तरह की कोई भी प्रतिमा ज्ञातव्य नहीं है। गौरी गौरवर्ण चार भुजा वाली होती है। जिनमें अक्षशूल, पद्म, कमण्डल तथा शेष हाथ अभयमुद्रा में होते हैं। ये कमल के आसन पर स्थित रहती हैं। इस स्वरूप में किसी प्रतिमा का निर्माण गुप्त काल में हुआ ऐसा निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता।

दुर्गा

दुर्गा के विस्तृत रूप की चर्चा मार्कण्डेय पुराण के देवी महात्म्य में दी हुई है। इनकी पूजा आयु के आधार पर अनेक रूपों में सन्ध्या, सरस्वती, चण्डिका, गौरी, महालक्ष्मी, ललिता आदि अनेक नामों से होती है।¹⁵ गुप्तकालीन दुर्गा प्रतिमाएं जो प्राप्त होती हैं, इसमें सुन्दर उदाहरण सैयदपुर भितरी से प्राप्त हुआ है। आजकल राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है। दुर्गा सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं। सिर का जूड़ा कलात्मक रूप में संवारा गया है। ये सिंह पर सवार चतुर्भुजी हैं उनके समने के दाहिने हाथ में शूल एवं पीछे में खड्ग है। बायें के पीछे के हाथ में चक्र और सामने में सम्भवतः शूल धारण किये हुए है। सिंह आवेग पूर्ण खड़ा है। यह प्रतिमा 6वीं सदी की है। सिंह वाहिनी दुर्गा की एक खण्डित प्रतिमा का चित्रण जे. जी. विलियम ने भ्जी किया है। सभी आभूषणों से सुसज्जित अपने बायें गोद में

शिशु लिए हुए हैं। दुर्गा का शीर्ष भुजायें तथा शिशु खण्डित हैं। सम्पूर्ण प्रतिमा मथुरा कला की 5 वीं सदी की उच्चकोटि की कृति रही होगी।

गुप्तकालीन सिक्कों पर भी दुर्गा का अंकन है जिसका सिक्कों के प्रतिमाओं के साथ चित्रण है। देर्गा की सिंह वाहिनी प्रतिमा तुमैन से भी प्राप्त होती है। यहां दुर्गा सिंह पर एक बालक को बायें तरफ बैठाया हुई हैं। उनके दाहिने भी एक बालक खड़ा है। सम्पूर्ण दृश्य एक वृक्ष के नीचे उत्कीर्ण है। दुर्गा की एक मृण्य प्रतिमा श्रावस्ती से प्राप्त हुई है। यह आजकल राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है। दुर्गा सिंह पर आरूढ है। उनके बायें हाथ में त्रिशूल है। सभी आभूषणों से युक्त हैं। मुखाकृति पर शांत और सौम्य भाव स्पष्ट है। प्रतिमा बड़ी ही कलात्मक है।

गुप्तकाल में देवी का महिषासुरमर्दिनी रूप अधिक लोकप्रिय रहा। महिषासुरमर्दिनी का उल्लेख भ्रम माता मन्दिर से प्राप्त एक अभिलेख में भी हुआ है। यह स्थान नीमच स्टेशन के पास है। लेख जनवरी 491 ई. सन का है जो देवी की लोकप्रियता का प्रमाण है।¹⁵ इस काल की प्रतिमा जिसमें यह रूप प्रस्तुत है वह उदयगिरी की गुफा 6 में देखने को मिलता है। देवी दश भुजी है। वे महिषासुर को पटक कर अपने बायेंज ण्ड पर रखी हुई युद्धरत है। वे उस पर अपने सभी आयुधों से आक्रमण कर उसका वध कर रही हैं। यह सम्पूर्ण प्रतिमा बहुत ही क्षतिग्रस्त है। देवी का भयानक रूप में महिषा के ऊपर आक्रमण स्पष्ट है। देवी का दाहिना पैर असुर के मस्तक पर है। उसके एक पैर को अपनी बायें एक भुजा से पकड़ी हुई वध कर रही है। महिषासुरमर्दिनी का एक और अत्यन्त सुन्दर रूप मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त हुआ है।

गुप्तकालीन मृण मूर्तियों में भी महिषासुरमर्दिनी का अंकन हुआ है। अहिच्छत्रा से महिषासुरमर्दिनी की पांच प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। इनकी चार-चार भुजाएं हैं। अपने भुजाओं में आयुधों को धारण किये हुए हैं। पर ये सभी खण्डित हैं। केवल महिषासुर के दमन के कोई-कोई भाव व्यक्त कर पाती है। महिषासुरमर्दिनी की एक मृण प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में भी देखने को मिलती है। यहां देवी दायें हाथ में महिष के पृष्ठ भाग को दबाती हुई तथा बायें हाथ से महिष का मुख भाग पकड़ी हुई दर्शायी गई है। यह प्रतिमा खण्डित है। स्तन भाग के ऊपर का हिस्सा टूटा हुआ है। कालीबंगा से प्राप्त

महिषासुरमर्दिनी की मृणमूर्ति पूर्ण रूप में है जो कि आजकल बीकानेर संग्रहालय में देखने को मिलती है। गल में हार, कानों में कुण्डल, बाजूबन्द, कंगन आदि सभी आभूषणों में सुसज्जित है। देवी की यह चतुर्भुजी प्रतिमा है। वे अपने सामने के दाहिने हाथ के शूल से महिष को मार रही हैं। सामने के बांये हाथ से उसके मुख को पकड़ कर पीछे की ओर तोड़ रही है। देवी की सम्पूर्ण प्रतिमा महिषासुरमर्दिनी रूप में प्रस्तुत हैं।

सप्तमातृकाएं

वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार सप्त मातृकाओं की कल्पना वैदिक है किन्तु कुषाणकाल में कुछ देवताओं की शक्तियों को सप्त मातृकाओं के अन्तर्गत विशिष्ट मान्यता मिली। सप्तमातृका कल्पना में ब्रह्मा की ब्रह्माणी विष्णु की वैष्णवी, शिव की महेश्वरी, इन्द्र की इन्द्राणि, कुमार की कौमारी, वराह की वराही, और यम की चामुण्डा की गणना कराई गई है। बृहत्संहिता में मातृकाओं की प्रतिमाओं का उल्लेख है। और कहा गया है कि मातृगणों की प्रतिमा उनके देवताओं के सदृश्य बनायें। ब्रह्मा के आयुधों सहित ब्रह्माणी, विष्णु की वैष्णवी आदि। किन्तु स्त्री मूर्ति को ध्यान में रखकर मातृकाओं को सानयुक्त, पृथुनितम्बा, तन्वंगी और कृसकटि बनावें।

सप्तमातृकाओं का प्रारम्भिक प्रस्तुतीकरण कुषाणकाल की कला में उपलब्ध होता है। ये सातों देवियां घाघरा पहने हुए आयुध और आभूषण रहित सीधे सादे वेश में दिखायी गयी हैं। इनका चित्रण एक पाषाणखण्ड पर हुआ है।¹⁶ इन मातृकाओं का निखरा हुआ रूप गुप्तकाल में ही देखने को मिलता है। कवि कालिदास ने भी शिव परिवार के साथ मातृकाओं का निखरा हुआ रूप गुप्तकाल में ही देखने को मिलता है। कवि कालिदास ने भी शिव परिवार के साथ मातृकाओं का कुमारसम्भव में चित्रण किया है।¹⁷ गुप्तकाल में प्रथम बार सप्त मातृकाओं को आयुध और आभूषणों से युक्त प्रस्तुत किया गया है।

गुप्तकाल में मातृका पूजा का जनमानस में अच्छा स्थान बन चुका था। इस काल में मातृकाओं के नाम से मन्दिर भी स्थापित हुए। दशपुर के राजा विश्व वर्मन के मंत्री कुमारक्ष ने मातृकाओं के लिए मन्दिर स्थापित किया था।¹⁸ बिहार के स्तम्भ लेख में मातृका के मन्दिरों का उल्लेख है।¹⁹ सप्त मातृकाओं का अंकन बैठे हुए समूह में ही अधिकतर मिलता है। प्रायः ये अपने आयुधों और वाहनों से पहचानी

जाती है। इन देवियों के वाहन वही हैं जो इनसे सम्बन्धित देवताओं के हैं। इन मातृकाओं के प्रतीक स्वरूप में बालक भी साथ-साथ दिखाये गये हैं। इस तरह के उदाहरण सामलाजी से प्राप्त है। इनमें अधिकतर मातृकाएं बच्चों को अपनी बायीं गोद में लिए हुए हैं। पर एक मातृका दाहिने गोद में भी एक बच्चे को लिए हैं। कई मातृकाएं अपने बच्चों को अपने पैरों के पास खड़ा किये हैं। जो मातृकाओं की गोद में जाने को उत्सुक हैं। समस्त मातृकाओं की मुखाकृति प्रसन्न चित है। वे विविध आभूषणों से सुसज्जित हैं।²⁰ मातृकाओं के साथ बच्चों के संबंध का उल्लेख महाभारत में हुआ है।²¹

मातृकाओं के स्वरूप की चर्चा विष्णु धर्मोत्तर पुराण में इस प्रकार है - ब्राह्मी को चार मुख छः हाथ वाला बताया गया है। उनके दाहिने हाथ में सुवा, शूल आदि रहता है। और बायें में पुस्तक तथा कुण्ड होता है। शेष भुजाएं अभय मुद्रा में रहती हैं।²² वैष्णवी गरुड़ पर आसीन श्याम वर्ण की तथा छः भुजा वाली होती है। दाहिने हाथ में क्रमशः गदा, पद्म और एक अभय मुद्रा में होता है।²³ बायें में क्रमशः शंख, चक्र तथा एक अभय मुद्रा में प्रदर्शित होता है। माहेश्वरी पांच मुख तथा तीन नेत्रों वाली कही गई है। वे वृष पर सवार रहती है। वे श्वेत वर्ण वाली तथा जटाजूट धारण किये हुए रहती है। उनकी छः भुजाएं हैं। दाहिनी भुजाओं में शूल, डमरू तथा एक वरद मुद्रा में होता है। बायें में शूल, घंटा धारण करती है। तथा एक अभयमुद्रा में प्रदर्शित रहता है। कौमारी रक्त वस्त्र धारण करती है। इनके तीन नेत्र होते हैं एवं चार भुजाएं होती है। दो में वे शक्ति और कुक्कुट तथा दो भुजाओं में वरद और अभय मुद्रा में रखती है। वाराही कृष्ण वर्ण युक्त विशाल उदार वाली कही गई है। उनका मुख पशु वराह के समान होता है। उनके दाहिने हाथों में दण्ड, खड्ग और एक वरद मुद्रा में होता है। बायें में खेटक, पाश तथा एक हाथ अभय मुद्रा में रहता है।

वाराही के एक प्रतिमा फिलडेलफिया कला संग्रहालय में प्रदर्शित है। प्रतिमा मध्य प्रदेश या राजस्थान से प्राप्त प्रारम्भिक छठी शती की गुप्त शैली में निर्मित है। वाराही एक पाद पीठ पर अपने बायें पैर को ऊपर किये तथा दाहिने को नीचे रखी हुई बायीं झुकी हुई उत्कीर्ण हैं। शेष भाग प्रभामण्डल से आवृत है। गले में एकावली, नीचे गया हुआ दोनों स्तनों के बीच में हार, कमरधनी, नुपुर धारण की हुई हैं। दोनों भुजाएं खण्डित हैं जिसमें मछली तथा खोपड़ी रहा होगा। बायीं ओर महिष स्वाभाविक रूप में

बैठा हुआ उरेहा गया है। यह विशेष उल्लेखनीय है।²⁴ गोद में शिशु ली हुई आसनस्थ मातृका की एक प्रतिमा बनारस के हरिश्चन्द्र घाट के सामने दिवाल पर द्रष्टव्य है। इसका उल्लेख डॉ० आनन्द कृष्ण ने किया है तथा इसका समय चौथी सदी का अन्तिम चरण माना है। मातृका बहुत ही क्षतिग्रस्त है। चारों भुजाएं खण्डित हैं। वाहन सिंह खण्डित द्रष्टव्य है। कलात्मक शैली में प्रतिमा गुप्त काल की ठहरती है। परमेश्वरी लाल गुप्त ने अमझारा से प्राप्त एक वाराही की प्रतिमा का भी उल्लेख किया है। इन्द्राणी की एक प्रतिमा इसी स्थान से प्राप्त है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त साम्राज्य में जितना महत्व विष्णु एवं शिव का था उतना ही महत्व गुप्त नरेशों द्वारा देवी प्रतिमाओं को भी दिया गया है। जिसका अंकन अत्यन्त ही भावपूर्ण रूप में विभिन्न मंदिरों एवं मूर्तियों के रूप में दृष्टिगत होता है।

गंगा-यमुना

गंगा-यमुना नदी देवियां हैं। इन दो महान नदियों के प्रति प्रत्येक भारतीय मन में आदर का भाव है। अतः इन नदी देवियों को भी गुप्तकाल में महत्व दिया गया है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में गंगा-यमुना की प्रतिमाओं के निर्माण में लक्षणों का उल्लेख हुआ है। वहां गंगा जी को मकर पर स्थित तथा चामर सहित, हाथ में कमल लिए हुए, चन्द्रमा के समान गौर वर्ण तथा सुन्दर मुख से युक्त बनाने का निर्देश हुआ है। बायें पार्श्व में कूर्म पर बैठी हुई चामर सहित हाथ में नीलकमल लिए हुए सौम्य नीलकमल के सदृश वर्णवाली यमुना जी को निर्मित करना चाहिए।²⁵ मकरवाहिनी, कच्छपवाहिनी, चामरधारिणी गंगा और यमुना का चित्रण कवि कालिदास ने भी अपने साहित्य में किया है।²⁶ गुप्तकाल में प्रथम बार कला में मकरवाहिनी गंगा और कच्छपवाहिनी यमुना का चित्रण देखने को मिलता है। इसका सबसे सुन्दर और प्रारम्भिक स्वरूप उदयगिरी में देखने को मिलता है। यहां गंगा को हिमालय से उतरती हुई जलधारा के बीच मानव रूप में अपने वाहन मकर पर स्थित दिखाया गया है।²⁷ इसी तरह बायें कच्छप पर स्थित यमुना का चित्रण किया है। उनके दाहिने हाथ में संभवतः कमल का नाल है। ये दोनों नदियां जल धारा में वाहनों पर स्थित भयानक रूप में चली आ रही हैं। आगे गंगा हैं पीछे यमुना भी आकर मिल गयी है। गंगा को आगे इसलिए प्रदर्शित किया गया है कि यह बड़ी नदी है। इनका आगे भी अस्तित्व है जबकि यमुना प्रयाग तक जाते-जाते अपने को गंगा में समाहित कर देती है। इसी का

सुन्दर चित्रण उदयगिरी के वराह प्रतिमा के बायें ऊपर किया गया है। नीचे समुद्र देवता मुकुट और आभूषणों से सुसज्जित अपने दोनों हाथों में कलश लिए हुए इन दोनों महान नदियों के स्वागत में खड़े हैं। यह गंगा सागर का चित्रण है जहां समुद्र में मिल जाती है। इन दोनों नदियों के बीच में संगीत में विभोर मुरली, वीणा आदि लिए हुए प्रतिमाएं हैं जो इन दोनों नदियों के बीच के इलाके की सम्पन्नता को प्रकट करती हैं। यहां द्वार के दोनों ओर भी गंगा-यमुना का चित्रण देखने को मिलता है। उदयगिरि के गंगा-यमुना को अपने वाहनों के साथ यहां गुफा नं. 3,6,19 में उकेरा गया है। इस गुफा का निर्माण सन् 400-401 ई.पू. का है।

गंगा-यमुना का उद्भव और विकास भरहुत सांची के यक्षियों और सालभंजिकाओं के रूप में ही माना गया है। मकरवाहिनी प्रतिमा का चित्रण अमरावती और नागार्जुन कोण्डा में हुआ है।²⁸ इसीलिए इनका सम्बन्ध इससे जोड़ा गया है। पर गंगा-यमुना को लक्षणों से युक्त प्रस्तुत करने वाली प्रतिमाएं प्रथम बार गुप्तकाल में ही देखने को मिलती हैं।

गुप्तकाल में प्रायः गंगा यमुना को मंदिर के द्वार के ऊपर, मध्य, नीचे दोनों ओर स्थापित किया जाता था। तिगोवा, शिवमंदिर, नचनाकुठार, देवगढ़, नागोद के मंदिर द्वारों पर गंगा-यमुना का चित्रण ऊपर अंकित है। भीतरगांव के मंदिर पर गंगा-यमुना को मध्य में स्थान दिया गया है। पार्वती मंदिर नचना कुठार में दो जोड़ा और दहपर्वतीया मंदिर के निचले भाग पर दोनों और गंगा-यमुना को स्थापित किया गया है। इस कोटि में भूमरा, एरण, वाराह मंदिर देवगढ़, सूकुरगढ़ ग्वालियर का तेलिया मंदिर आते हैं। कभी-कभी इन नदी देवताओं को नीचे चौकट पर भी स्थान दिया गया है। इसका उदाहरण भभुआ में देखा जा सकता है।³⁰ मकरवाहिनी गंगा की सम्पूर्ण प्रतिमा वेशनगर से भी प्राप्त हुई है। यह प्रतिमा आजकल वोस्टन संग्रहालय में रखी है। गंगा अपना पैर आगे पीछे किये हुए मकर पर खड़ी हैं। उनके दाहिने हाथ में कोई वस्तु है जो स्पष्ट नहीं है। वे कुण्डल, हार, बाजूबन्द, कंगन, नुपूर आदि सभी आभूषणों से सुसज्जित है। उनके आगे एक पुरुष और पीछे एक स्त्री प्रतिमा है। संभवतः ये उनकी परिचारिका है। गंगा वृक्ष के नीचे बहुत ही शान्त भाव में खड़ी हैं।³¹ इसी तरह से मन्दसौर से प्राप्त गंगा वाहन पर खड़ी प्रस्तुत की गई है। उनका दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। बांये में कमल है और

पीछे एक परिचारक खड़ा है।³² भूभरा की गंगा-यमुना की प्रतिमाएं बहुत ही क्षतिग्रस्त हैं। इसी तरह तिगोवा से प्राप्त यमुना आम्र वृक्ष के नीचे वाहन कच्छप पर शालभंजिका के रूप में हैं।³³ तुमैन से प्राप्त गंगा की प्रतिमा ग्वालियर संग्रहालय में रखी हुई है। इसमें गंगा मकर पर खड़ी है। उनके दाहिने हाथ में कोई पात्र है। उनके दाहिने और दो स्त्री परिचारिकाएँ खड़ी हैं। यह प्रतिमा पांचवी शती की है।³⁴ गंगा की खण्डित प्रतिमा सामलाजी से भी प्राप्त हुई है। गंगा यहां भी अलग-बलग परिचारिकाएँ निर्मित हैं।³⁵ इसी तरह करहौद से गंगा-यमुना की आदमकद की प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं।

राज्य संग्रहालय लखनऊ में मथुरा से प्राप्त यमुना की एक प्रतिमा है। यह प्रतिमा एक स्तम्भ के निचले भाग पर उत्कीर्ण है। यमुना अपने वाहन कच्छप पर सवार है। आभूषणों में कुण्डल, हार, मेखला, बाजूबन्द, कंगन पहली है। यह प्रतिमा ओर एक छोटी आकार में परिचायिका छत्र लिए यमुना के अभिवादन में खड़ी है। यह प्रतिमा पांचवी शती की है।³⁵ बक्सर बिहार के मंदिर द्वार पर उत्कीर्ण गंगा-यमुना की प्रतिमा सर्वविदित है। गंगा सभी आभूषणों से सुसज्जित अपने वाहन मकर पर है। उनकी यह भयानक मुद्रा ऐसी भव्य बनी है और ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि मानों वे जल के मध्य बह रही हों। वे अपने हाथों में कमल लिए हुए हैं। पीछे परिचारिका के रूप में एक स्त्री की प्रतिमा बनाई गई है जो खड़ी है। ऊपर माला लिए हुए विद्याधर की प्रतिमा है जो उनके स्वागत में उड़ता हुआ आ रहा है। पीछे एक लम्बी छवी लिए हुए छोटे आकार के पुरुष की प्रतिमा है। ठीक उपरोक्त वर्णन के ही अनुसार यमुना अपने वाहन कच्छप पर खड़ी है। उनका दाहिना हाथ खण्डित है और बांये में कमल का नाल है। गंगा-यमुना दोनों प्रतिमाओं के केश विन्यास बहुत ही सुन्दर ढंग से बनाये गये हैं।³⁶ यह प्रतिमा उत्तरार्द्ध गुप्तकाल की है। आजकल ये दोनों ही प्रतिमायें भारतीय संग्रहालय कलकत्ता में रखी हुई है। दहपरवतिया मंदिर की प्रतिमाएं जो द्वार के निचले भाग पर अंकित हैं वे गंगा-यमुना की हैं। ऊपर चन्द्रशाल में छोटे आकार में गरुड़, लकुलिश एवं सूर्य को स्थान दिया गया है। इन दोनों प्रतिमाओं का सिर प्रभामण्डल युक्त हैं।³⁷ इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गुप्तकालीन कलाकारों ने गंगा-यमुना का चित्रण मंदिरों के द्वारों पर अत्यन्त ही भावपूर्ण एवं रोचक तरह से किया था। जो कि कलात्मक दृष्टिकोण से दर्शनीय है।

सन्दर्भ टिप्पणियां-

1. मत्स्य पुराण, 156/17
2. वायु पुराण, 9/85
3. मत्स्य पुराण, 157/16/17
4. वायु पुराण 9/84
5. विष्णु पुराण 5/1/70-81
6. वायु पुराण 96/205
7. मत्स्य पुराण 157/15-16
8. वायु पुराण 101/298
9. वायु पुराण 30/163
10. ब्रह्माण्ड पुराण 4/6/6
11. विष्णु पुराण 1/9102/105
12. मत्स्य पुराण 301/40-47
13. विष्णु पुराण 1/8/19
14. जे० सी० हार्क गुप्त, स्क० चि० 91-92
15. डी. सी. सरकार, शक्ति कल्ट इन वेस्टर्न इण्डिया शक्ति कल्प एण्ड तारासंपादित, डी. सी. सरकार, कलकत्ता, पृ. 87-88
16. डॉ० अग्रवाल, भारतीय कला, पृ० 320
17. कुमार, 7, 30 और 38, 6, 80 ,81
18. का. इ. इ. 3 पृ. 76
19. वही, पृ० 49
20. वही, पृ० 54
21. महाभारत वन पर्व 228-10
22. वि० ध० 1999/28, 32

- 23.वही 199/55
- 24.पी. पाल. आ. इमेज चित्र 45
- 25.गुप्त साम्राज्य, पृ० 573
- 26.श्री बद्रीनाथ मालवीय, विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला, पृ. 21
- 27.कुमार 7:42
- 28.पी के अग्रवाल, गुप्त टे आ पृ० 67, 68
- 29.वही पृष्ठ 68
- 30.पी के अग्रवाल, वही पृ. 91-92
- 31.कुमारस्वामी, हि. इ. इ. आ. चित्र 177
- 32.पी. के. अग्रवाल, वही फलक 14 चित्र डी
- 33.मार्ग मा 26 नं० 3, पृ. 36 चित्र 18, 20 और 22
- 34.एस. ओ. ठाकुर, के. स्क. आ. म्यु. ग्वा. पृ. 7 नं० 10
- 35.पी. के. अग्रवाल, वही पृ० 91
- 36.डॉ. जोशी, के. ब्रा. स्क. स्टे. म्यु. लखनऊ, पृ० 130 चित्र 66, 67
- 37.ए. एस. आई., नई दिल्ली, न. 81/58

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत विश्वविद्यालय
दिल्ली

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक स्रोत

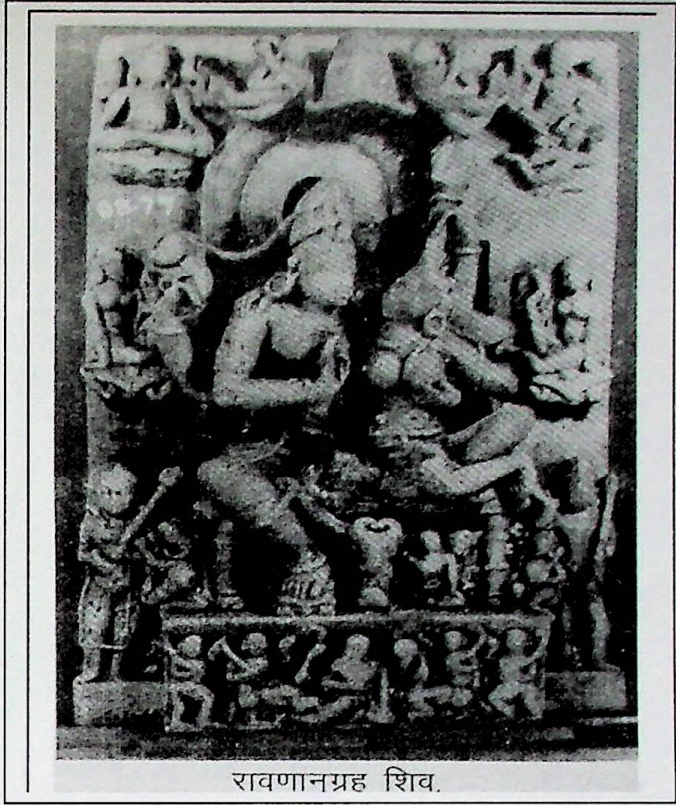
1. ऋग्वेद संहिता, वैदिक शोध संस्थान मंडल, पूना
2. अथर्ववेद, विश्व बन्धु होशियारपुर, आनन्दाश्रम ग्रन्थक, 32
3. शतपथ ब्राह्मण, बर्त वेवर, लिपजिग 1924, चन्द्रकान्त तर्कालंकार
4. महाभारत, अंग्रेजी अनुवाद, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता
5. रामायण, जानकीदास शर्मा, गीताप्रेस गोरखपुर, सं० 2017
6. ब्रह्माण पुराण, हिन्दी अनुवाद, रामप्रताप त्रिपाठी, प्रयाग सं० 2003
7. मार्कण्डेय पुराण, अं अनुवाद एफ० ई० पार्जिटर, बि० ई०, कलकत्ता, 1905
8. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, प्रिय बाला शाह, बड़ौदा, 1961
9. अमरकोश, रामस्वरूप कृत भाषा टी. संहिता वेंकटेश्वर प्रेस, चेन्नई, 1905

हिन्दी ग्रन्थ

1. गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं, भगवान सिंह, रामानन्द विद्या भवन, दिल्ली
2. मथुरा कला, वासुदेवशरण अग्रवाल, 1966
3. गुप्तकालीन मुद्राएं, वासुदेवशरण अग्रवाल, भारतीय कला वाराणसी- 1966
4. भारतीय कला और संस्कृति, भगवतशरण उपाध्याय, दिल्ली, 1965
5. वैष्णवधर्म, परशुराम चतुर्वेदी, इलाहाबाद, 1953
6. प्राच्य प्रतिमा, कृष्णदत्त बाजपेयी, 1956
7. वाकाटक गुप्त युग, मजुमदार और अल्लेकर, दिल्ली, 1962
8. हिन्दू देव परिवार का विकास, रमाशंकर त्रिपाठी, 1996

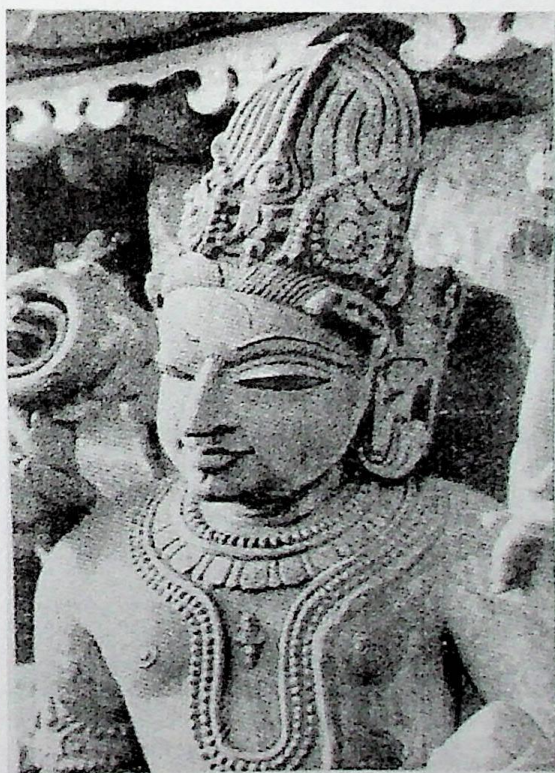
चित्र संकलन

मनकपुत्र कवि

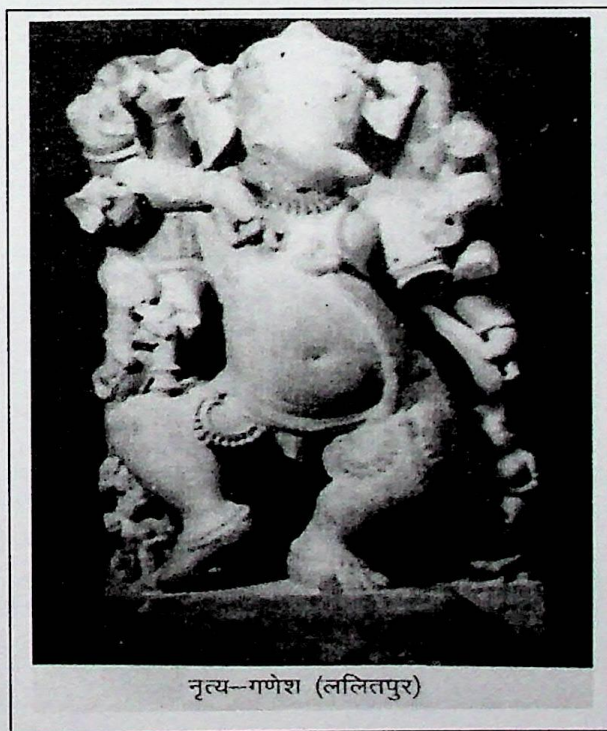
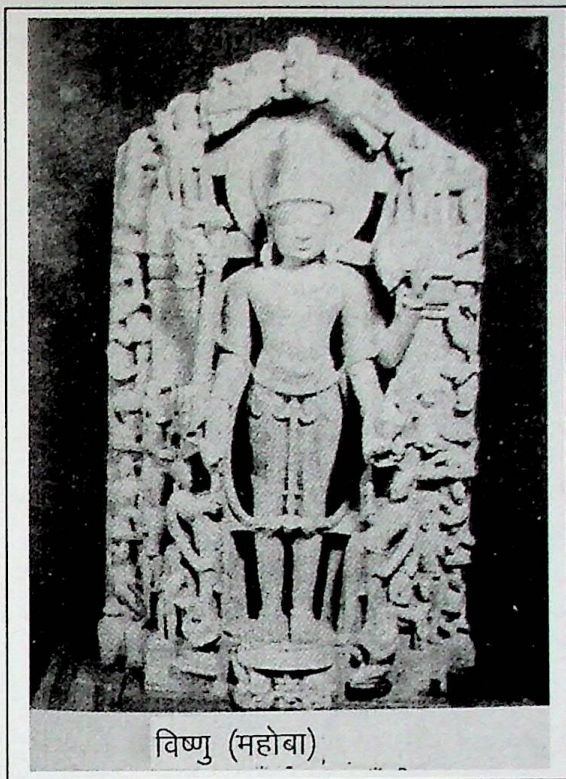




विष्णु का विश्व रूप



विष्णु





कल्याण-सुंदर

TH96M,SIN-G



182780



GURUKUL KANGRI LIBRARY	
Signature	Date
Access No.	Yanti Raj (Lib. Sec)
Class No.	Yanti Raj
Cat No.	
Tag etc.	
E.A.R.	
Recomm. by	
Date En by	Yanti Raj
Chc. (9)	

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या TH 96m

आगत संख्या 182780

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.	Yanti Raj	Lib. Trainee 2
Class No.	Yanti Raj	
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by		
Data En. by	Yanti Raj	
Check		

837.31